# क्षमताएं पुनर्परिभाषित

## साहस और उपलब्धियों की चालीस सत्य कथाएं

ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड
रोहिणी, दिल्ली

2005

# क्षमताएं पुनर्परिभाषित

## साहस और उपलब्धियों की चालीस सत्यकथाएं

मुक्ता अनेजा
तथा
आईवे टीम

अनुवादक:
डॉ. आर.एस. चौहान

सलाहकार सम्पादक:
ए. के. मित्तल

सम्पादक:
जे. एल. कौल, जॉर्ज अब्राहम

परिसंघ की रजत जयंती के अवसर पर जारी

2005

प्रकाशक:
ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड
सैक्टर - 5, रोहिणी, दिल्ली-110085.

©:ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड

मुद्रक:
रिलाइंस प्रिंटिंग्स, दिल्ली

विकलांगता आन्दोलन के प्रवर्तक

**लाल अडवानी**

की स्मृति में समर्पित

# भूमिका

साधारणत: यही पाया जाता है कि असाधारण रूप से प्रतिभासम्पन्न दृष्टिबाधित यदा-कदा ही कहीं-कहीं पर छिट-पुट रूप से देखने में आते हैं। परन्तु इस उत्कृष्ट पुस्तक को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी धारणा निश्चित रूप से सही नहीं है।

भारतीय उपमहाद्वीप तथा उसके बाहर 'ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड' (ए.आई.सी.बी.) गत 25 वर्षों से दृष्टिबाधितों के अधिकारों के संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाता रहा है। ए.आइ.सी.बी. की गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु दृष्टिबाधितों के आत्मसम्मान व आत्म प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक योगदान के अधिकार को समझा जा सकता है। अत: इस संगठन के लिए भारतीय संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था में ऐसे असाधारण व्यक्तियों के योगदान की प्रशंसा के माध्यम से 'रजत जयंती' मनाना स्वाभाविक भी है और उपयुक्त भी।

इस सामग्री के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय दृष्टिबाधित महिला व पुरुषों को उत्कृष्ट प्रतिभा का विशेष वरदान प्राप्त है। यह तथ्य और भी अधिक आश्चर्यजनक इसलिए बन जाता है, क्योंकि भारतीय परिवेश असाध्य बाधाओं तथा असीम असमानताओं से परिपूर्ण रहा है। ऐसी भंयकर परिस्थितियों में भी कई दर्जन दृष्टिहीन व्यक्तियों ने साहित्य एवं भाषा, समाज-सेवा तथा चिकित्सा विज्ञान, गणित, कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी, कानून, व्यापार,संगीत एवं शास्त्रीय नृत्य जैसे विविध क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

जीवन-इतिहास के ऐसे अनूठे प्रकाशन से सम्बद्ध होना ''वर्ल्ड ब्लाइंड यूनियन'' (डब्ल्यू.बी.यू.) के लिए अत्यधिक गौरव का विषय है। निश्चित रूप से विजय एवं सृजनात्मकता के ये सजीव प्रतीक विश्व के समस्त दृष्टिबाधितों को प्रेरणा प्रदान करेंगे।

(डॉ. विलियम रोलैण्ड)
अध्यक्ष,
वर्ल्ड ब्लाइंड यूनियन

# सन्देश

इस पुस्तक में सम्मिलित सामग्री को मैंने बड़ी रुचि एवं नम्रतापूर्वक पढ़ा है। इसमें वर्तमान युग के दृष्टिबाधित नायकों की वास्तविक जीवन-गाथाएँ सम्मिलित हैं, जिन्होंने विविधतापूर्ण महान देश भारत के सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान सुरक्षित कर लिया है।

होमर से हेलन केलर तक, विश्व इतिहास के अभिलेख दृष्टिबाधित लोगों के योगदान तथा साहस की चर्चा करते हैं। वर्तमान काल में भी महापौर, मंत्री, प्रोफेसर, मनोचिकित्सक तथा जोखिम से खेलकर माउंट एवरेस्ट विजेताओं के रूप में समस्त विश्व में श्रेष्ठ तथा सफल दृष्टिबाधित एवं आंशिक दृष्टिवान व्यक्ति मिलते हैं। यह प्रकाशन इस तथ्य को भली-भांति उजागर करता है कि भारतीय दृष्टिबाधित व्यक्ति दृष्टिहीन कल्याण के क्षेत्र के साथ-साथ मुख्य धारा के व्यवसाय और रोजगार की विभिन्न गतिविधियों में भी दूसरों के समकक्ष हैं। एन.ए.बी.पी. कई विकाशील देशों के 'अपनी सहायता स्वयं करो' के आन्दोलन को कई दशकों से प्रोत्साहन देने का प्रयास करता रहा है, जो दृष्टिबाधित भाई-बहिनों को प्रगति के मार्ग पर निरन्तर आगे ले जाने में प्रयत्नशील रहा है। हमारे लिए यह बड़ी प्रसन्नता एवं सन्तोष का विषय है कि इन अग्रणी संगठनों के साथ हमारे संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप श्रेष्ठता के नवीनतम कीर्तिमान स्थापित करने को उत्सुक दृष्टिहीनों के लिए अवसरों के कुछ और नये क्षेत्र उपलब्ध हुए हैं। ऐसे ही सफल दृष्टिबाधित नागरिकों के उदाहरण से विकासशील जगत में यह सिद्ध होता है कि दृष्टिहीनता सफल व स्वावलम्बनपूर्ण जीवन के उद्देश्य प्राप्ति में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती ।

ए.आई.सी.बी. से एन. ए. बी.पी. का सम्बन्ध मात्र एक दशक पुराना है। अपनी स्थापना की 'रजत जयंती' मनाने वाले परिसंघ का विकास इस छोटी-सी अवधि में अत्यधिक प्रशंसनीय रहा है। हम इस अवसर पर ए.आई.सी.बी. को हार्दिक बधाई देते हैं तथा विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी यह संगठन सम्पूर्ण भारत में दृष्टिबाधित एवं आंशिक दृष्टिवानों की सेवा की अपनी परम्परा को और अधिक सशक्त तथा व्यापक बनाएगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अपने-अपने क्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए प्रयासरत हजारों दृष्टिबाधितों के लिए आशा व विश्वास का एक सशक्त सम्बल व प्रकाशस्तम्भ सिद्ध होगी। मुझे आशा है कि यह पुस्तक समस्त शोधकर्ताओं,



सामुदायिक प्रशंसकों तथा सरकारी अधिकारियों के लिए जानकारी, प्रेरणा और स्फूर्ति का भी एक अमूल्य स्रोत सिद्ध होगी। सरकारी अधिकारियों के लिए यह पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्हें ए.आई.सी.बी. जैसे दृष्टिहीनों के संगठनों के साथ मिलकर दृष्टिबाधितों तथा अन्य विकलांगों के लिए समान अवसर तथा पूर्ण सहभागिता सुनिश्चित करने का दुरूह कार्य सम्पन्न करना है।

इस अत्यधिक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हेतु पहल के लिए ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड को मेरी ओर से हार्दिक बधाई।

Arnt Holte

(आर्न्ट होल्टे)
निदेशक (अन्तर्राष्ट्रीय विषय),
एन. ए. बी. पी., नॉर्वे।

# आभार

गत कई वर्षों से भारतीय दृष्टिबाधितों की उपलब्धियों से सम्बन्धित किसी अच्छी पुस्तक की आवश्यकता बड़ी तीव्रता से महसूस की जा रही थी। यह सत्य है कि इस दिशा में सफल दृष्टिहीनों के संक्षिप्त जीवन परिचयों को यदा-कदा कुछ लोगों ने प्रस्तुत करने के छिटपुट प्रयास किए हैं, किन्तु ऐसे प्रयास देश के विस्तार की दृष्टि से निश्चय ही बहुत सीमित रहे हैं। हिन्दी भाषा में तो स्थिति और भी अधिक निराशाजनक थी।

जब ए.आई.सी.बी. ने अपनी स्थापना की 'रजत जयंती' मनाने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया तो अनेक प्रस्ताव विचारार्थ रखे गये। इस बिन्दु पर आम सहमति थी कि इस महत्वपूर्ण अवसर पर अन्य गतिविधियों के साथ-साथ ए.आई.सी.बी. को भारत में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत सफल दृष्टिबाधितों के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना एकत्रित कर उसे एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना चाहिए। यह भी अनुभव किया गया कि समकालीन समावेश तथा सामाजिक एकीकरण की विचारधारा के अनुरूप दृष्टिहीन कल्याण क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य करने वाले दृष्टिबाधितों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक एवं उपयुक्त होगा। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक की अवधारणा तथा वास्तविकता ने जन्म लिया। यह पुस्तक अब तैयार हो चुकी है और इसकी कुछ प्रतियाँ नि:शुल्क वितरण के लिए प्रस्तुत हैं। यद्यपि मूल पुस्तक अंग्रेजी भाषा में है, किन्तु अपने हिन्दी भाषी पाठकों को ध्यान में रखते हुए इसका हिन्दी रूपान्तरण भी तैयार है। यही नहीं, यह पुस्तक ब्रेल में हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं में भी उपलब्ध है।

इस प्रकाशन में ऐसे 40 दृष्टिबाधित महिला तथा पुरुषों के वास्तविक जीवन-वृत्तांत सम्मिलित किये गए हैं, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों और गतिविधियों में श्रेष्ठता प्राप्त की है। अत: यह पुस्तक ज्योतिष, विज्ञान, चिकित्सा, साहित्य, सिविल सेवा, सूचना प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन, बैंकिंग, व्यापार तथा उद्यम, नृत्य, एकाउंटेंसी, कानून एवं पत्रकारिता आदि विभिन्न व्यवसायों में श्लाघनीय उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले सफल दृष्टिबाधितों पर आधारित है।

जब हम इस चुनौतीपूर्ण परियोजना की सफलता पर दृष्टिपात करते हैं तो तुरन्त हमें उन अनेक विशेषज्ञों और शुभाकांक्षियों का ध्यान आता है, जिन्होंने इस कार्य में हमारी सहायता की। उन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना हमारा पुनीत



कर्त्तव्य है।

सर्वप्रथम हम अपने उन दृष्टिबाधित नायकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपनी विजयगाथाओं से सम्बद्ध हमारी प्रश्नावलियों के उत्तर देकर इस परियोजना को सफल बनाया। उनकी सहायता व सहयोग के बिना यह परियोजना तथा हजारों शुभाकांक्षियों की अपेक्षाएं अधूरी ही रह जातीं। यद्यपि स्थानाभाव के कारण उनमें से प्रत्येक का पृथक-पृथक नाम लेकर आभार व्यक्त करने में हम स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहे हैं, परन्तु नि:सन्देह इस पुस्तक में संग्रहीत उनकी उपलब्धियाँ उनके द्वारा प्रदत्त सहयोग के प्रति हमारी सच्ची आभार भावना का साक्ष्य हैं। पत्रकारिता की अद्‌भुत क्षमता से सम्पन्न अनेक महानुभावों ने पुस्तक में सम्मिलित विभूतियों की सफलता व संघर्ष से सम्बद्ध सूचनाएं एकत्रित कर उन्हें सजीव एवं रोचक विजयगाथाओं में ढालने के लिए अथक परिश्रम किया है।

इस प्रकाशन में सम्मिलित अधिकतर जीवन-वृत्तों को तैयार करने में हम श्रीमती मुक्ता अनेजा के प्रति हार्दिक आभारी हैं, जिन्होंने पुस्तक की आधी से अधिक विषय सामग्री को लिखकर हमारी सहायता की। हम ए.आई.सी.बी. के सचिव डॉ. अनिल अनेजा, रेव. जोसफ राज तथा श्रीमती ललिता को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस प्रकाशन को रोचक बनाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये। इस प्रकाशन को प्रदान किये गये विशेष योगदान के लिए हम आईवे टीम, विशेषकर सर्वश्री राजेश कुमार, आनन्द शर्मा, अर्जुन सेन गुप्ता, एस. नाथ, सुश्री अंजली सेन गुप्ता, अंजेला एस. नाथ तथा प्रिया वर्द्धन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून में बी.ए., बी.एड. के पाठ्यक्रम के समन्वयक, डॉ. आर.एस. चौहान ने अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध मूल सामग्री को हिन्दी में रूपान्तरित करने में अपने श्लाघनीय रूपान्तरण कौशल के माध्यम से हमें महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। डॉ. चौहान के योगदान के लिए हम उनकी प्रशंसा करते हैं तथा हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

इस परियोजना के समन्वयन व पुस्तक के सम्पादन में समय व परामर्श देने तथा मार्गदर्शन के लिए हम ए.आइ.सी.बी. के संस्थापक सदस्य, श्री ए. के. मित्तल के भी बहुत आभारी हैं। उनके बिना शायद पुस्तक इस रूप में प्रस्तुत कर सकना सम्भव न होता। स्कोर फउंडेशन के अध्यक्ष श्री जॉर्ज अब्राहम पुस्तक के सम्पादन में हमारे लिए प्रेरणा व शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत रहे हैं। उनके सहयोग के लिए उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

सुश्री मीरा मित्तल तथा ए.आई.सी.बी. के कर्मचारी टैक्स्ट एंट्री तथा अन्य

कम्प्यूटर गतिविधियों के लिए प्रशंसा के पात्र हैं तथा हमारे समस्त शुभचिन्तक भी धन्यवाद के पात्र हैं।

कोई भी ऐसा कठिन कार्य आर्थिक सहयोग के बिना असम्भव होता है। इस परियोजना हेतु प्रदत्त आर्थिक योगदान के लिए हम प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों--यूरोपियन यूनियन ऑफ दि ब्लाइंड,डैनिश एसोसिएशन ऑफ दि ब्लाइंड, नॉर्वेजियन एसोसिएशन ऑफ दि ब्लाइंड एण्ड पार्शियली साइटिड तथा डब्लू.बी.य. के पूर्व महासचिव श्री मैड्रो जूरिटा के प्रति उनकी आर्थिक सहायता के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि असंख्य शुभचिन्तकों के अपूर्व परिश्रम तथा नि:स्वार्थ संयुक्त प्रयासों का परिणाम यह पुस्तक हमारे समक्ष दृष्टिबाधित एवं दृष्टिवान पाठकों के लिए मार्गदर्शन तथा प्रेरणा का दीर्घकालीन स्रोत साबित होगी।

(जे.एल. कौल)
महासचिव,
ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड



# विषय सूची


| सं. | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | **अतुल रंजन सहाय :**<br>**मानव क्षमताओं के नवीन आयामों की खोज में**<br>—प्रिया वर्धन | 1 |
| 2. | **ऊषा नागराजन :**<br>**एक प्रकाश स्तम्भ**<br>—मुक्ता अनेजा | 4 |
| 3. | **के. रामकृष्ण :**<br>**नवीन अवसरों के प्रणेता**<br>—प्रिया वर्धन | 7 |
| 4. | **कंचन पम्नानी :**<br>**जन्मजात विजेता**<br>—अंजलि सेनगुप्ता | 11 |
| 5. | **कृपाल सिंह कसैल :**<br>**प्रसिद्ध पंजाबी विद्वान व साहित्यकार**<br>—मुक्ता अनेजा | 16 |
| 6. | **गरीमेला सुब्रामण्यम :**<br>**प्रबुद्ध पत्रकार**<br>—अंजलि सेनगुप्ता | 19 |
| 7. | **गीतावानी शमन्ना :**<br>**असंभव जिनके शब्दकोश में नहीं**<br>—मुक्ता अनेजा | 22 |
| 8. | **जगदीश लूथरा :**<br>**एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व**<br>—मुक्ता अनेजा | 24 |
| 9. | **ज्योतिन्द्र वी. मेहता :**<br>**मुख्यधारा में**<br>—प्रिया वर्धन | 27 |

10. **दिलीप लायल्का :** 30
**उच्चतर लक्ष्योन्मुख**
—अंजलि सेनगुप्ता

11. **दीपक नरेन्द्र मोतीवाला :** 34
**प्रतिष्ठित प्रतिवक्ता**
—मुक्ता अनेजा

12. **नफीसा परवेज बोहरीवाला :** 37
**नए शिखरों की खोज**
—मुक्ता अनेजा

13. **परिमला विष्णु भट्ट :** 40
**एक बहुआयामी व्यक्तित्व**
—मुक्ता अनेजा

14. **पी. आर. पिचुमनी :** 43
**उत्कृष्ट उद्योगपति**
—मुक्ता अनेजा

15. **प्रणवलाल :** 46
**एक उदीयमान प्रबंधन व्यावसायिक**
—राजेश कुमार

16. **बी. एस. वेंकटेस :** 50
**एक कर्मवीर**
—मुक्ता अनेजा

17. **बूसेगौड़ा :** 53
**यशस्वी नर्तक**
—अंजलि सेनगुप्ता

18. **माधुरी एम. देसाई :** 56
**एक असाधारण ज्योतिषी**
—मुक्ता अनेजा

19. **मरिता कारदोज :** 59
**महिला समाजसेवी**
—मुक्ता अनेजा



20. **मोरेश्वर जे. धर्माधिकारी :** 62
**विशिष्ट वैज्ञानिक प्रतिभा**
—मुक्ता अनेजा

21. **मोहन चन्द्रसेकरन :** 65
**वायलिन आचार्य**
—मुक्ता अनेजा

22. **रवि कुमार अरोड़ा :** 68
**साकार हुआ जिनका सपना**
—अंजिल सेनगुप्ता

23. **एल. सुब्रामणि :** 71
**उदीयमान पत्रकार**
—अर्जुन सेनगुप्ता

24. **विक्रम डालमिया :** 75
**मिट्टी को सोना बनाने वाले**
—प्रिया वर्धन

25. **वेद प्रकाश वर्मा :** 78
**श्रेष्ठता के उद्दीप्त प्रतीक**
—मुक्ता अनेजा

26. **शिरीष देशपांडे :** 82
**प्रखर विधिवेत्ता**
—मुक्ता अनेजा

27. **शिवाजी लक्ष्मण च्वहाण :** 85
**मनोवांछित व्यवसाय में व्यस्त**
—प्रिया वर्धन

28. **शिवजतन ठाकुर :** 88
**प्रबल पुरोधा**
—मुक्ता अनेजा

29. **एस. तरसेम :** 91
**सृजनात्मक लेखक**
—मुक्ता अनेजा

30. **साधन गुप्ता :** 94
**छह दशकों से ख्याति के शिखर पर**
—मुक्ता अनेजा

31. **संजय डांग :** 97
**एक नवीन प्रयास**
—अंजेला एस. नाथ

32. **सतीश कुमार अमरनाथ :** 101
**राही नई राह के**
—अंजिल सेनगुप्ता

33. **सिद्धार्थ शर्मा :** 105
**उत्कृष्टता की ओर अग्रसर**
—आनन्द शर्मा

34. **सौभाग्या गोयल :** 108
**एक विजयी महिला**
—मुक्ता अनेजा

35. **श्री रामभद्राचार्य :** 111
**द्रष्टा व धर्माचार्य**
—मुक्ता अनेजा

36. **सुरेन्द्र सिंह सांगवान :** 116
**ख्याति-प्राप्त शिक्षाशास्त्री**
—मुक्ता अनेजा

37. **सुषमा अग्रवाल :** 120
**देदीप्यमान गणित शिक्षिका**
—मुक्ता अनेजा

38. **सुशील भूटानी :** 123
**सफल उद्यमी**
—मुक्ता अनेजा

39. **हरीशकुमार पी. कोटियन :** 126
**सूचना प्रौद्योगिकी प्रबंधक**
—मुक्ता अनेजा

40. **हीरू चंदनानी :** 128
**नए क्षितिजों की ओर**
—प्रिया वर्धन



# अतुल रंजन सहाय

## मानव क्षमताओं के नवीन आयामों की खोज में

—प्रिया वर्धन

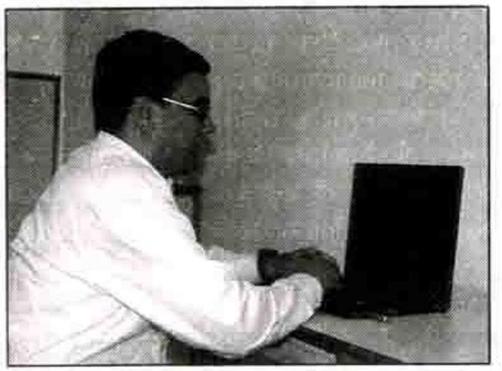

अवसरों के अभाव में उन्होंने स्वयं अवसरों को उत्पन्न किया तथा श्रेष्ठता की ओर अपना मार्ग प्रशस्त किया। ऐसा व्यक्तित्व है--टाटा स्टील की सहायक कम्पनी बिजनेस एक्सीलेंस, जस्को (Business Excellence, Jusco) के मुखिया अतुल रंजन सहाय का ।

अतुल का जन्म दरभंगा, बिहार में 1966 में हुआ था, परन्तु वे बचपन में ही अपने परिवार के साथ पूर्वोत्तर में चले गए। दृष्टि पटल-विच्छेदन के कारण 14 वर्ष की आयु में उनकी बाँयी तथा 23 वर्ष की आयु में दाहिनी आँख की रोशनी समाप्त हो गई।

अपनी 14 वर्ष की आयु के अनुभव को याद करते हुए वे कहते हैं ''मैं जिस वस्तु पर भी दृष्टि केन्द्रित करता , वह दिखाई देनी बन्द हो जाती। तब मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ गड़बड़ है।'' दृष्टि-क्षति के दौरान भी अतुल रंजन का विचार था कि उनकी दुनिया का अंत नहीं हुआ है। निराशा कुछ ही समय में समाप्त हो गई तथा अगले नौ वर्षों तक उन्होंने एक आँख से भली भाँति काम चलाया।

अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि के लिए अध्ययन करते समय उनकी दूसरी आँख की दृष्टि भी समाप्त हो गई और वे पूर्ण दृष्टिहीन हो गए। सम्भावित के लिए तत्परता की चर्चा करते हुए वे कहते हैं, ''चिकित्सकों के मूड तथा आवाज को भाँपकर पट्टी खुलने से पहले ही मैं सम्भावित को पहचान चुका था।''

दृष्टिबाधित होने के पश्चात उनके पास पुनर्वास हेतु बहुत ही सीमित समय था। पहले के दिनों में सामाजिक कार्यों में उनका योगदान दृष्टिबाधा के पश्चात उनकी शक्ति सिद्ध हुआ। वे स्मरण करते हैं, ''मुझे हेलन केलर तथा लुई ब्रेल के विषय में पढ़ना याद है। इसके अतिरिक्त विकलांगों के साथ पारस्परिक सम्बन्धों ने भी समायोजन में मेरी सहायता की।''

ब्रेल लिपि से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी प्राथमिक चिन्ता एम.ए. पूर्ण करने की थी। अवधारणाओं तथा परिभाषाओं को समझने एवं याद रखने के लिए उनमें छिपे अन्वेषक ने पिन, तार तथा बोर्ड इत्यादि की सहायता से डाइग्राम (diagram) और ग्राफ (graph) बनाने का उपाय खोज निकाला।

सन् 1989 में पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग से एम. ए. करने वाले अतुल प्रथम दृष्टिहीन व्यक्ति हैं। बाद में राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून में उन्होंने ब्रेल सीखी। 1990-91 में प्रशिक्षण के दौरान उन्होंने सर्वोत्तम प्रशिक्षणार्थी का पुरस्कार तथा अन्य कई सम्मान प्राप्त किए।

स्नातकोत्तर उपाधि के पश्चात श्री सहाय जीवन के चौराहे पर पहुँच गए थे। वे समझ चुके थे कि भेदभावपूर्ण वर्तमान प्रणाली में उनकी आजीविका व आकाँक्षाएं पूरी नहीं हो पाएंगी। भारत में दृष्टिबाधितों के लिए आजीविका के विकल्प अत्यधिक सीमित होने के कारण उन्होंने स्वयं के लिए उपयुक्त अवसर के निर्माण का निश्चय किया। श्री सहाय ने टाटा स्टील के तत्कालीन संयुक्त प्रबन्ध निदेशक डा. जे. जे. ईरानी से मिलने का समय लिया तथा उन्होंने डा. ईरानी को स्वयं को उपयुक्त अवसर देने के लिए मना लिया।

अतुल रंजन ने वर्ष 1992 में टाटा स्टील में एक अधिकारी के रूप में सेवा आरम्भ की और उसके पश्चात लगातार उनकी पदोन्नति होती रही। आज सन् 2005 में उन्हें टाटा समूह कम्पनियों की व्यापार श्रेष्ठता के मूल्यांकन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है, वे संगठन के लिए टाटा बिजनेस एक्सीलेंस मॉडल के संरक्षक हैं।

उनकी उपलब्धियां और भी हैं। वर्ष 2003-2004 में एक्स. एल. आर. आई., जमशेदपुर से सामान्य प्रबन्धन में एक्जीक्यूटिव डिप्लोमा करने के लिए चयनित तीस कर्मचारियों में से वे भी एक थे। अतुल ने यह डिप्लोमा सफलतापूर्वक पूरा किया। इस डिप्लोमा को पूरा करने वाले देश के वे प्रथम दृष्टि विकलांग व्यक्ति हैं। सूचना प्रौद्योगिकी इकाई के प्रमुख के रूप में अतुल रंजन ने प्रौद्योगिकी तथा सम्प्रेषण में अनेक दृष्टिवान सहयोगियों को प्रशिक्षण प्रदान किया है।

वे अनावश्यक सहायता की अपेक्षा नहीं रखते तथा आत्मसम्मान पर विशेष ध्यान देते हैं। जब वे अपने कार्यक्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कर्मचारी के रूप में उभरे तो उनके अनेक सहकर्मियों ने जानना चाहा कि उन्हें सामान्य प्रशिक्षण प्रणाली का सामना



करना पड़ा अथवा उन्हें कुछ छूट दी गई थी। कम्पनी में नियुक्ति के पश्चात अपने सहकर्मियों की आरम्भिक प्रतिक्रिया एवं दृष्टिकोण के विषय में वे कहते हैं, ''प्रारम्भ में कुछ लोग सोचते थे कि यह टाटा स्टील की ओर से सहृदयता का परिणाम था। उसके बाद धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से उन्होंने मुझे दूसरे कर्मचारियों की तरह स्वीकार कर लिया।'' वास्तव में अनेक सहकर्मी उन्हें अपने लिए एक खतरा समझते हैं क्योंकि उनके कई वरिष्ठ सहकर्मी अब उनके कनिष्ठ बन चुके हैं।

अध्ययन तथा रोजगार में रुचि के अतिरिक्त श्री सहाय पर्वतारोहण में भी सक्रिय रहे हैं। वे अति महत्वाकांक्षा की भावना से प्रेरित होकर 13,000 फुट से अधिक ऊँचाई वाले चार ट्रेकिंग अभियानों में भाग ले चुके हैं।

सम्भवत: उनके साहसिक व्यक्तित्व से अन्य दृष्टि-अक्षम लोगों को भी सशक्तिकरण का अनुभव होता है। उन्होंने जमशेदपुर में दृष्टि विकलांगों के सशक्तिकरण की नींव डाली और तत्पश्चात पूर्वी भारत के अन्य स्थानों पर ऐसी गतिविधियों का प्रारम्भ व संवर्धन किया।

श्री सहाय ने दृष्टिबाधितार्थ खेलों, विशेषकर क्रिकेट में, महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने दृष्टिबाधितार्थ वार्षिक साहसिक शिविर को जमशेदपुर में आरम्भ किया और उसे संस्थागत रूप प्रदान किया। साथ ही साथ वर्ष 1998 के दृष्टि विकलांग विश्व कप क्रिकेट के संयोजन में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। श्री अतुल रंजन सहाय का दृढ़ मत है कि दृष्टिहीनों के सशक्तिकरण हेतु सूचना एवं सम्प्रेषण को उनकी पहुँच में लाना अनिवार्य है और कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी इसमें सहायक की भूमिका निभा सकती है। ''विंडोज के लिए जॉज (Jaws) जैसे सॉफ्टवेयर ने भारत में मेरे तथा अन्य अनेक दृष्टिबाधितों के जीवन को बदल डाला है।'' वे ऐसी प्रौद्योगिक-क्रान्ति की आशा करते हैं जो दृष्टिहीनों के जीवन को श्रेष्ठ बना सकेगी।

अतुल का विचार है कि भारत में विकलांग, विशेषकर दृष्टिहीन इतना प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं कि ''उत्तम कार्य हेतु उत्साह है। अत: सन्तुष्ट होकर बैठना घातक होगा।''

स्थाई सकारात्मकतावादी होने के फलस्वरूप श्री सहाय ने समस्त आपदाओं को सहनशीलतापूर्वक सहा है, ''जीवन एक चुनौती है, जितना अधिक आप संघर्ष करते हैं, उतना ही अधिक जीवन्त बनते हैं।'' उनके परिवार में चार वर्षीय बेटी प्रज्ञा तथा पत्नी सीमा सम्मिलित हैं।

•

# ऊषा नागराजन
## एक प्रकाश स्तम्भ

—मुक्ता अनेजा

एक दृष्टिबाधित महिला चिकित्साधिकारी के रूप में सफलतापूर्वक सेवारत! अटपटा लगता है न? लेकिन क्यों ? विश्वास कीजिये, सतत प्रयास तथा परिश्रम से बहुत कुछ संभव हो सकता है।

ऊषा नागराजन का जन्म अगस्त 1963 में कोलकाता में हुआ। वहाँ के राष्ट्रीय मेडिकल कॉलेज से उन्होंने एम. बी. बी. एस. किया। उसके बाद यौवन के चरमोत्कर्ष, 24 वर्ष की आयु में दृष्टि विकलांगता सामने आ खड़ी हुई। इससे जबरदस्त झटका लगना स्वाभाविक ही था। दृष्टि अक्षमता ने उनके पसंदीदा व्यवसाय के सपने पर दीर्घाकार प्रश्नचिह्न लगा दिया जिसके लिये उन्होंने अनेक वर्ष अथक परिश्रम किया था। ऊषा का विश्वास है कि यदि एक सम्भावना समाप्त होती है तो दूसरी का जन्म होता है। इस सकारात्मक अभिवृत्ति ने उन्हें घोर निराशाजनक परिस्थितियों में भी अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता दी।

ऊषा ने कोलकाता नेशनल मेडिकल हॉस्पिटल से इन्टर्नशिप पूरी की। परन्तु सन् 1987 में मधुमेहजन्य पूर्ण दृष्टिबाधा के कारण उन्हें उच्च अध्ययन का विचार छोड़ना पड़ा। अनेक वर्ष तक दृष्टि-प्रधान समाज में दृष्टि-आश्रित परिवेश के फलस्वरूप लगभग सभी कार्य हेतु दृष्टि-निर्भर बन जाने वाले व्यक्ति के लिये आकस्मिक दृष्टि विकलांगता से समायोजन शब्दातीत आघात होता है। दृढ़ इच्छाशक्ति के सहारे ऊषा ने मानसिक, शारीरिक तथा व्यावहारिक रूप से स्वयं को आगामी संघर्ष के लिये तैयार किया। जनवरी 1990 में उन्होंने विकलांगों के लिये वाई. एम.



सी. ए. कॉलेज चेन्नई से गतिशीलता व अनुस्थितिज्ञान (चलने-फिरने तथा मानसिक तैयारी की तकनीक) में प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा दृष्टि अक्षमता से समायोजन की तकनीकें सीखीं।

ऊषा नागराजन वर्षों के अनुशासित चिकित्सा अध्ययन को निरर्थक बनाने की इच्छुक नहीं थीं बल्कि उपयोगी जीवन व्यतीत करना चाहती थीं। अत: उन्होंने किसी भी बाधा को व्यवसाय के चुनाव में आड़े नहीं आने दिया। वे विरोध तथा सम्भावित असफलता-जन्य भय के समक्ष अडिग रहीं। उनके साहसी मन ने आगामी सफलता में विशेष योगदान दिया। फरवरी 1990 में उन्हें तिरुपुतुर, तमिलनाडु में स्वीडिश मिशन हॉस्पिटल में चिकित्सा अधिकारी नियुक्त किया गया। उनके उत्तरदायित्वों में स्वास्थ्य शिविरों में रोगियों को देखना, मिशन में नर्सिंग पाठ्यक्रम वाले छात्रों को शिक्षित करना तथा उसी परिसर में स्थित दृष्टिबाधितार्थ विद्यालय के विद्यार्थियों को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना सम्मिलित था। डॉ. ऊषा ने यहाँ वर्ष 1991 के आरम्भ तक सेवा की जो प्रशंसनीय थी।

फरवरी 1991 में डॉ. नागराजन को मदुरै के ग्रेस कैनथ फाउंडेशन अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी नियुक्त किया गया, जहाँ वे अभी तक सेवारत हैं। यहाँ उनके उत्तरदायित्वों में नर्सिंग पाठ्यक्रम के छात्रों को शारीरिक रचना व कार्य-प्रणाली, चिकित्सकीय व शल्य नर्सिंग एवं प्रसूति व स्त्री रोग पर लेक्चर देना सम्मिलित हैं। एक ही स्थान पर अनेक वर्षों तक काम करना उनकी योग्यता का द्योतक है। डॉ. ऊषा नागराजन लोगों को परामर्श देने और उनका मनोबल बढ़ाने तथा जीवन के प्रति सकारात्मक सोच के लिये विख्यात हैं।

व्यावसायिक जीवन के साथ-साथ उनका व्यक्तिगत जीवन भी सुखद व सार्थक है। उनके अनुसार पूर्वाग्रहग्रस्त पुरुष-प्रधान समाज में दृष्टि-अक्षम युवती के लिये उपयुक्त वर मिलना कठिन है। किन्तु साथ ही वे कहती हैं, "मेरा सौभाग्य है कि मुझे समझदार दृष्टिवान पति मिले हैं।" उनके पति पार्ले ऐग्रो (Parle Agro) में उप-महाप्रबन्धक हैं। उनका एक बेटा है जो चौथी कक्षा में पढ़ता है। अवकाश का समय डॉ. ऊषा खाना बनाने, संगीत तथा सकारात्मक सोच वाले साहित्य के कैसेट सुनने में बिताती हैं।

वे स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कई संगठनों से जुड़ी हुई हैं। डॉ. नागराजन मदुरै ध्वन्यांकित पुस्तकालय परामर्श समिति, एन. ए. बी., ए. आई. सी. बी., आई. ए. बी. तथा एन. आई. वी. एच. की सदस्य हैं। इन संगठनों के अनेक कार्यक्रमों, गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं में उन्होंने वक्ता के रूप में भाग लिया है।

सामुदायिक गतिविधियों के दौरान भी डॉ. नागराजन अपने विचार प्रकट करती हैं। मदुरै में आयोजित कई एड्स (Aids) जागृति कार्यक्रमों में उन्होंने

पौष्टिक आहार के सम्बन्ध में परामर्श दिया है। आकाशवाणी ने उनके स्वास्थ्य-सम्बन्धी भाषणों को प्रसारित किया है।

सामाजिक गतिविधियों में ऊषा जी अपनी विशेषज्ञता व ज्ञान से समाज को लाभांवित करती हैं। प्रशंसनीय सामाजिक योगदान के लिये उन्हें अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं। इनमें टी.सी. क्लब, मदुरै द्वारा विशिष्ट युवा व्यक्ति पुरस्कार (1993) तमिलनाडु सरकार द्वारा स्वर्ण पदक (2002) तथा मदुरै रोटरी क्लब द्वारा प्रदत्त व्यावसायिक विशिष्टता सम्मान शामिल हैं। दिसम्बर 2004 में राष्ट्रपति द्वारा उन्हें विशिष्ट विकलांग कर्मचारी पुरस्कार प्रदान किया गया तथा जनवरी 2005 में एन. ए. बी., मुम्बई ने सर्वोत्तम उपलब्धियों के लिये 'नीलम कांगा पुरस्कार' से सम्मानित किया। हमें आशा है कि पुरस्कारों की यह सूची विस्तृत होती रहेगी तथा समाज डॉ. नागराजन की सेवाओं से लाभांवित होता रहेगा।

•



# के. रामकृष्ण
## नवीन अवसरों के प्रणेता

—प्रिया वर्धन

किसी के भी रामकृष्ण द्वारा फोन पर ही पलभर में अल्जेब्रा के प्रश्नों को सुलझाने के बारे में सुनकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। यह पूछे जाने पर कि वे ऐसा कैसे पर पाते हैं, उनका सरल सा उत्तर होता है–"तार्किक रूप से सोचें उपयुक्त क्रम को अपनाएं और आपको उत्तर मिल जाएगा।" वे आगे कहते हैं "समस्याएं घरेलू हों अथवा कार्यालय सम्बन्धी, मैं समस्याओं को दूर करने पर नहीं, समस्याओं के कारकों के उन्मूलन पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता हूँ।" इसी से स्पष्ट हो जाता है कि वे आई. डी. बी. आई. लि. के कॉर्पोरेट स्ट्रेटजी तथा प्लानिंग विभाग के महाप्रबन्धक पद तक कैसे पहुँचे।

उनका जन्म तमिलनाडु के त्रिची नगर में 7 जनवरी, 1950 को हुआ तथा पालन-पोषण मुंबई में हुआ। जन्म से ही उन्हें मोतियाबिंद था परन्तु अवशिष्ट दृष्टि होने के कारण वे सामान्य जीवन व्यतीत करते रहे। ग्यारह वर्ष की आयु में काला मोतिया होने के कारण उनकी बाँयी आँख की दृष्टि समाप्त हो गई। तदोपरान्त 13 वर्ष की आयु में दाहिनी आँख में दृष्टिपटल विच्छेदन के फलस्वरूप उनकी दृष्टि घटने लगी और उन्होंने स्कूल जाना बन्द कर दिया। इस तरह उनके महत्वपूर्ण पाँच वर्ष बेकार हो गए। बाइस वर्ष की आयु होने तक वे पूर्ण दृष्टिहीन हो चुके थे।

बचपन से ही रामकृष्ण के मन में गणित के प्रति विशेष रुचि थी। उनके शब्दों में, "स्कूल में गणित ही ऐसा विषय था, जिसमें मेरी पर्याप्त रुचि थी," गणित के

प्रति यही उत्कंठा उनकी शक्ति सिद्ध हुई। रामकृष्ण की असाधारण स्मरण शक्ति ने दृष्टिहीनताजन्य बाधाओं के समाधान तथा उनके सपनों को साकार करने में मदद दी। उनके परिवार को विकलांगता सम्बन्धी अथवा उसके पुनर्वास से सम्बद्ध जानकारी नहीं थी। अत: वे कुछ मदद नहीं कर सके, परन्तु उन्होंने रामकृष्ण को कभी हतोत्साहित भी नहीं किया। वे स्मरण करते हुए कहते हैं, ''मेरे परिवार का विचार था कि मेरी दृष्टिबाधा भाग्य का फल है।'' तत्पश्चात दृष्टिबाधा के सम्बन्ध में उन्होंने जानकारी प्राप्त करना आरम्भ किया तथा कुछ मित्रों एवं दृष्टिहीन कल्याण से सम्बद्ध लोगों के परामर्श के फलस्वरूप दृष्टिहीनता तथा इसके पुनर्वास के विषय में उन्हें अधिक जानकारी मिल पाई। अंतत: रामकृष्ण ने पुन: अट्ठारह वर्ष की आयु में आठवीं कक्षा से शिक्षा आरम्भ की। शुरू-शुरू में उन्हें वाचक तथा श्रुतलेखक ढूंढ़ने में कठिनाई का सामना करना पड़ा, परन्तु एन. ए. बी. की सहायता से इन समस्याओं का समाधान हो गया। उनके पश्चात उनका शैक्षिक एवं व्यावसायिक जीवन उत्कृष्ट रहा है।

छब्बीस वर्ष की आयु में अर्थशास्त्र में एम. ए. करने के पश्चात उन्होंने पाँच वर्ष तक एक इलैक्ट्रॉनिक कम्पनी में काम किया पर इससे वे सन्तुष्ट नहीं थे। साथ ही वे बचपन से अपने मन में संजोए एक स्वप्न को साकार करना चाहते थे। वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''बहुत पहले एक दोस्त चाहता था कि मैं एम. बी. ए. करूं। उस समय मैं या मेरा दोस्त एम. बी. ए. का अर्थ भी नहीं जानते थे। परन्तु वह मेरा सपना बन गया।''

रामकृष्ण ने प्रबन्धन अध्ययन में एक स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के लिए प्रार्थनापत्र भेजा। चयन प्रक्रिया में प्रवेश परीक्षा, व्यक्तित्व परीक्षण तथा साक्षात्कार शामिल थे। रामकृष्ण ने बताया कि विश्वविद्यालय प्रशासन की सोच थी कि कोई दृष्टिहीन व्यक्ति ऐसा करने के बारे में सोच ही कैसे सकता है? परन्तु वे रामकृष्ण को प्रवेश परीक्षा में बैठने से नहीं रोक सकते थे और फिर उनका परीक्षाफल भी अत्यधिक प्रभावशाली रहा।

प्रवेश परीक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने मुंबई के एस. पी. जैन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट एण्ड रिसर्च सैन्टर में दाखिला लिया एवं वित्तीय क्षेत्र में विशेष अध्ययन किया। उन्होंने गणित, सांख्यिकी तथा अन्य मात्रात्मक विषयों तथा सम्प्रेषण कौशल में अपनी असाधारण शक्ति का भरपूर लाभ उठाया तथा अपने सहपाठियों को इन क्षेत्रों में मदद दी। बदले में, उन्होंने रामकृष्ण को उनके अध्ययन में भरपूर सहयोग दिया। रामकृष्ण ने परीक्षाओं में 'प्रथम श्रेणी' प्राप्त की तथा संभवत: भारत का प्रथम दृष्टिहीन एम. बी. ए. होने का कीर्तिमान स्थापित किया।

कैम्पस साक्षात्कार प्रक्रिया में उन्हें कम्पनियों द्वारा नौकरी का अवसर दिया गया, परन्तु उन्होंने आई. डी. बी. आई. लि. को तरजीह दी। उनके शब्दों में, ''मैंने



जान-बूझकर आई. डी. बी. आई. लि. में नौकरी आरम्भ की, क्योंकि उन्होंने ही नौकरी के लिए पहल की थी तथा मेरी योग्यता पहचानते हुए मुझे प्रमुख विभागों से सम्बद्ध किया। आई. डी. बी. आई. लि. का व्यवहार सकारात्मक तथा पारस्परिक रूप से लाभदायक सिद्ध हुआ है। ढांचागत सुविधाओं के उपलब्ध होने के कारण रामकृण को अपने उत्तरदायित्व वहन करने में कोई कठिनाई नहीं आई। उन्हें अन्य कर्मचारियों के समान ही समझा गया, परन्तु वे स्वीकार करते हैं कि ''गलती करना मानव स्वभाव है.....'' वाली कहावत उन पर तथा सामान्यत: विकलांग व्यक्तियों पर लागू नहीं होती। अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए उन्हें दूसरों से कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ता था। वे कहते हैं, ''विकलांगता का परिणाम हो अथवा न हो, यदि किसी विकलांग व्यक्ति द्वारा त्रुटि हो जाती है तो तुरंत उसे विकलांगता से जोड़कर देखा जाता है--यह जानते हुए मैं दुगुनी मेहनत करके सुनिश्चित करता था कि मेरा काम त्रुटिहीन हो।''

त्रुटिहीन सेवा के बावजूद उनकी कार्यक्षमता के विषय में न केवल जिज्ञासा अपितु आशंका भी रहती थी। एक बैठक में उनके विषय में किसी ने पूछा कि संगठन में दृष्टिबाधित व्यक्ति के साथ कैसे व्यवहार किया जाए। तत्कालीन अध्यक्ष स्व. एस. एस. नाडकर्णी द्वारा इसका बड़ा ही सटीक उत्तर दिया गया, ''वह दृष्टिबाधित व्यक्ति कौन है?'' उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा, ''कार्यालय में अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए किसी भी समूह में भाग लेते हुए हममें से किसी को यह प्रतीत नहीं होता कि रामकृष्ण दृष्टिबाधित व्यक्ति हैं।''

गणितीय योग्यता तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग रामकृष्ण की सफलता के दो महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। प्रौद्योगिकी में सक्रीन रीडिंग सॉफ्टवेयर, टॉकिंग उपकरण, ओसीआर स्केनिंग सॉफ्टवेयर तथा इलैक्ट्रॉनिक डायरी इत्यादि सम्मिलित हैं।

सम्प्रति श्री रामकृष्ण आई. डी. बी. आई. लि. में महाप्रबन्धक हैं। उनके उत्तरदायित्वों में औद्योगिक परियोजनाओं का वाणिज्यिक मूल्यांकन, विपणन रणनीतियां, प्रौद्योगिकी तथा मूल्य निर्धारण इत्यादि सम्मिलित हैं। अपनी नौकरी के साथ-साथ वे स्वयंसेवी कार्य के लिए भी समय निकाल लेते हैं। वे एन. ए. बी. से सम्बद्ध हैं तथा शिक्षण एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भी प्राय: भाग लेते हैं। गायन, विशेषकर भजन गायक के रूप में उन्होंने अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं।

चाहे गणित हो, संगीत अथवा व्यवसाय, श्री रामकृष्ण श्रेष्ठता के पुजारी हैं। श्रेष्ठता के कारण ही अनेक संगठनों ने उन्हें पुरस्कृत किया है। ए. आई. सी. बी., एन.सी.पी.ई.डी.पी., एन. ए. बी., तथा लायन्स क्लब इत्यादि से उन्हें पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। दूरदर्शन ने उनके जीवन तथा उपलब्धियों पर आधारित दो भागों में 'स्ट्राइवर्स एण्ड अचीवर्स' शीर्षक से एक कार्यक्रम भी तैयार किया है।

विदेशों में प्रचुर मात्रा में अनुभव तथा भारतीय परिवेश में भी विकलांगता के परिदृश्य से परिचित होने के फलस्वरूप वे एक बड़ी सही टिप्पणी करते हैं, ''मेरा विश्वास है कि विकसित देशों में ढांचागत सुविधाओं, आने-जाने की सुगमता तथा सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था इत्यादि के बावजूद बहुत कम विकलांग व्यक्ति ही वहां मुख्यधारा का अंग बन पाये हैं।'' भारत के सन्दर्भ में वे विश्वासपूर्वक कहते हैं कि विकलांगों को नवीन चुनौतियों के लिए तैयार किया जाना चाहिए तथा उन्हें विकलांगता के सम्बन्ध में एक भिन्न सोच उत्पन्न करने की आवश्यकता है। उनका स्पष्ट मत है कि वर्तमान परिदृश्य को संशोधित करने के लिए प्रशिक्षण की नवीन व कल्पनाशील विधियों के साथ-साथ स्कूल स्तर से व्यापक जनजागरण अभियान आरम्भ करने की आवश्यकता है। उनके प्रेरणादायक शब्दों में, ''विश्व में कोई भी व्यक्ति विकलांग नहीं है, वास्तव में, हम सभी प्रकारान्तर से योग्य हैं। अपनी विकलांगता को लेकर हमें लज्जित अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। आखिरकार आप एक भिन्न रूप में योग्य हैं। स्वयं में विश्वास उत्पन्न कीजिए। आप जो चाहें, वही बन सकते हैं। आपको वही मिलेगा, आप जिसके योग्य हैं, उससे कम अथवा अधिक नहीं।''

श्री के. रामकृष्ण वास्तव में भारतीय दृष्टिबाधितों में चुनौतियों से संघर्ष करने वाले अग्रणी योद्धा हैं।

•



# कंचन पम्नानी
## जन्मजात विजेता

—अंजलि सेनगुप्ता

सफल अधिवक्ता तथा प्रतिवक्ता कंचन पम्नानी ने अपनी दृष्टिबाधा को कभी भी अपने मनपसन्द काम में आड़े नहीं आने दिया। 19 सितम्बर, 1965 को मुम्बई में जन्मी कंचन जन्म से ही न्यून दृष्टि से ग्रस्त थीं। जन्मजात मोतियाबिंद, भैंगापन, स्वत: पुतली घूमना, दृष्टि-पटल विकार, मैक्यूला (दृष्टिपटल का मध्य भाग) विकार इत्यादि नेत्रों से सम्बद्ध अनेक रोगों के फलस्वरूप कंचन 34 वर्ष की होते-होते पूर्ण दृष्टिबाधित हो गई।

उनके माता-पिता ने उन्हें भरपूर सांवेगिक एवं सामाजिक सहयोग दिया एवं उनके बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कंचन की दृष्टिबाधा के विषय में जानकर वे बहुत परेशान हुए तथा आवश्यक सूचनाओं, चिकित्सा परामर्श और सहयोग के लिए उन्होंने बड़ी भाग-दौड़ की। उच्च मध्यमवर्गीय परिवार से सम्बद्ध होने के कारण कंचन के माता-पिता अच्छे से अच्छा उपचार कराने का व्यय वहन करते थे। कंचन कहती हैं, ''मेरे माता-पिता ने मुझे एक अच्छे स्कूल में भर्ती करवाया,भरपूर सहयोग दिया व अतिरिक्त समय भी दिया। उन्होंने गृहकार्य, पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों एवं सामाजिक कौशल के विकास में मेरा मार्गदर्शन किया।''

श्याम-पट्ट पढ़ने में असमर्थता के बावजूद उन्होंने दृष्टिवान बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण की। परीक्षाओं में प्रश्नपत्र पढ़ने में उन्हें कठिनाई होती थी और भी बहुत सी बातें थीं जिन्हें आमतौर पर कोई महत्व नहीं दिया जाता। जैसे कि ''मैं प्रयोगों के समय थर्मामीटर की रीडिंग नहीं ले पाती थी। ग्राफ बनाते समय मुझे बड़े आकार के

पैमाने इस्तेमाल करने पड़ते थे।''

कंचन अपनी समस्याओं का कोई न कोई हल ढूंढ़ ही लेती थीं। ''शिक्षक जो कुछ बताते, मैं उसकी ओर विशेष ध्यान देती थी, क्योंकि मैं श्याम-पट्ट पर लिखी सामग्री पढ़ने में असमर्थ थी। अपने सहपाठियों की कॉपी में झाँक लेती या फिर उठकर श्यामपट्ट के पास चली जाती ताकि उस पर लिखी सामग्री को पढ़ सकूं।'' उनके अध्यापकों ने न केवल अध्ययन में उनकी भरपूर मदद की, अपितु उनके व्यक्तित्व विकास में भी विशेष रुचि ली। थर्मामीटर रीडिंग की असमर्थता पर ध्यान देने के बजाय उन्होंने अधिक अंक प्राप्त करने के लिए दूसरे विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया।

अध्ययन में सफलता के लिए और भी कई उपाय कंचन ने किए। वे बताती हैं, ''मैं मेमोरेक्स विधि (Memorax Method) का प्रयोग करती, प्वाइंट गिनने के लिए अंगुलियों का प्रयोग करती। हाँ, मैं हर बात को ध्यानपूर्वक सुनती तथा समस्त मौखिक कार्य कर एकाग्रचित्त रहती।''

अध्ययन में कुशाग्र-बुद्धि होने के साथ-साथ कंचन मुम्बई के अपने स्कूल बालसिंघम हाउस में सामान्य ज्ञान में भी सर्वश्रेष्ठ छात्रा थीं। वे बताती हैं, ''मैं अपने विद्यालय की समाज सेवा इकाई 'वर्कर्स ऑफ बालसिंघम की' अध्यक्षा थी।'' उन्होंने आकाशवाणी से प्रसारित अंग्रेजी कार्यक्रम बॉर्नवीटा क्विज कन्टेस्ट में अपने विद्यालय का प्रतिनिधित्व किया। स्कूल व कॉलेज जीवन में उन्होंने वाद-विवाद तथा भाषण प्रतियोगिताओं में भी भाग लिया।

''मैंने अपने कॉलेज (सिडनस कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकॅनोमिक्स, मुम्बई) का अंतरमहाविद्यालय क्विज प्रतियोगिताओं तथा टेलीविजन के कार्यक्रम 'वट्स द गुड वर्ड' में भी प्रतिनिधित्व किया। मैं कॉलेज में अनेक समितियों की सदस्य भी थी।'' कुछ एक पद जो उन्हें दिए गए, इस प्रकार हैं:-

पब्लिक स्पीकिंग एण्ड डिबेटिंग सोसाइटी की अध्यक्ष, योजना मंच की प्रशासनिक अधिकारी तथा कैरियर गाइडेंस सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति की सदस्य।

बी.कॉम. करने के पश्चात उन्होंने गवर्नमेन्ट लॉ कॉलेज से एलएल.बी. तथा 1993 में बम्बई विश्वविद्यालय के विधि विभाग से एलएल.एम. किया। इस स्तर पर भी कंचन ने पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। गवर्नमेन्ट लॉ कॉलेज में वे विधि सभा समिति, वार्षिक पत्रिका एवं पुस्तकालय समिति की सदस्य थीं। इतना ही नहीं वे कॉलेज की 'वी द ज्यूरी' नामक पत्रिका की संस्थापक सम्पादक भी रहीं। बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित कृत्रिम संसद में वे कन्ट्री-एल्बिट की प्रधानमन्त्री भी बनीं।



कॉलेज के दौरान ही कंचन पम्नानी ने रोट्रैक्ट आन्दोलन से स्वयं को जोड़ लिया था और वे अपने क्लब की अध्यक्ष बनीं। तत्पश्चात वे जिला स्तर पर दो वर्ष तक व्यावसायिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सेवाओं की निदेशक भी थीं। वे डिस्ट्रिक्ट रोट्रैक्ट प्रतिनिधि (District Governer) के पद तक पहुँची जिसके अन्तर्गत 42 क्लब थे। 1988-89 में उन्हें उत्कृष्ट निदेशक का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

कानून ने सदा ही सुश्री पम्नानी को अपनी ओर आकर्षित किया है। वे हमेशा अतिरिक्त ज्ञान की खोज में रहती हैं जो उनके काम को औरों से कुछ बेहतर बना सके। वे बताती हैं कि अपने पिता से उन्हें विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई, ''मैंने बचपन में उन्हें मुकदमों की तैयारी करते देखा था। बड़ी होकर मैंने पैरी मैसन पढ़ा और अपने प्रति होने वाले न्याय से प्रभावित हुई।'' उन्होंने मुम्बई की इनकार्पोरेटेड लॉ सोसाइटी से सॉलिसिटर का पाठ्यक्रम पूरा किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इंग्लैण्ड की लॉ सोसाइटी से क्वालीफाइड लायर्स ट्रांसफर टैस्ट 'सॉलिसिटर' सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंग्लैण्ड भी सम्पन्न किया है।

सुश्री कंचन पम्नानी ने मात्र कुछ वर्ष ही नौकरी की। उन्होंने प्रसिद्ध लॉ फर्म, ध्रुव एण्ड कम्पनी से प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। वहाँ पर उन्होंने तीन वर्ष तक वरिष्ठ वकील के साथ काम किया। उनके कार्यालय में भी कुछ संशयवादी थे परन्तु कुल मिलाकर कंचन उनकी आपत्तियों का समाधान कर पाईं। ''मैंने स्पष्ट किया कि यद्यपि न्यू हाइपर दृष्टि हूँ परन्तु दूसरों से कहीं अधिक परिश्रम करूंगी तथा किसी प्रकार का काम करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मुझे अपने वरिष्ठ सहयोगियों को संतुष्ट करना पड़ा कि यद्यपि पढ़ने में मुझे कठिनाई होती है परन्तु मुझ में काम को सम्भालने, मुवक्किलों को सन्तुष्ट करने, कोर्ट में हियरिंग समेत पूर्ण उत्तरदायित्व लेने की पर्याप्त क्षमता है। मेरी सीमित दृष्टि के कारण मेरे काम में कोई बाधा नहीं आई।''

छोटी-मोटी समस्या जैसे कि बहुत छोटे अक्षरों में लिखी सामग्री को पढ़ने में यदा-कदा कठिनाई होती थी, क्योंकि वे तीव्र गति से पढ़ने में असमर्थ थीं। 1991 से 1994 तक उन्होंने स्वतन्त्र अधिवक्ता के रूप में काम किया। इस दौरान वे मुवक्किलों को वसीयत, बौद्धिक सम्पदा अधिकार एवं उपभोक्ता विवादों से सम्बद्ध मामलों पर परामर्श देती थीं। पहले कुछ ग्राहक मिलने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि ये उनके मित्र ही थे तथा जिन्हें पम्नानी की क्षमता व कौशल में विश्वास था। इसके पश्चात इन मित्रों ने अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा उनसे जुड़ी कम्पनियों तक जानकारी पहुँचाई इस प्रकार मित्रों की सहायता से उनके पास पर्याप्त काम आने लगा।

अपनी स्वतन्त्र वकालत के अतिरिक्त सुश्री पम्नानी अध्ययन भी करती रहीं। इसी बीच उन्हें दृष्टि-पटल विच्छेदन के कारण चार बार ऑपरेशन कराने पड़े।

तत्पश्चात उन्होंने एक वर्ष के लिए ठक्कर एण्ड ठक्कर कम्पनी के साथ सहायक के रूप में काम किया। एडवोकेट एवं सॉलीसिटर्स की यह कम्पनी अन्तर्राष्ट्रीय मुवक्किलों को उड्डयन, बैंकिग, कम्पनी कानून, विदेशी मुद्रा नियमन, विदेशी सहयोग इत्यादि से सम्बद्ध कानूनों पर परामर्श देती है।

दृष्टिबाधा का कंचन के व्यवसाय पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। वे कहती हैं, ''कुछ एक नए मुवक्किल आने से पहले ही जानते हैं कि मैं दृष्टिबाधित हूँ। उनमें से कुछ को मुझसे मिलकर इस तथ्य की जानकारी हो जाती है पर मात्र दृष्टिबाधा के कारण शायद ही किसी को मुझसे समस्या हुई हो। मेरे व्यावसायिक जीवन में केवल दो ऐसे मौके आए जहाँ मुवक्किलों को विश्वास की समस्या हुई और उन्होंने दूसरा वकील कर लिया।''

उनका विश्वास है कि ''दृष्टिबाधित व्यक्ति भी किसी अन्य व्यक्ति की भाँति समाज का अंग है। समय आ चुका है कि समाज इस तथ्य को स्वीकार करे तथा उन्हें भी दूसरों की भाँति योगदान का अवसर प्रदान करे।''

सुश्री पम्नानी व्यवसाय में कुशलता के लिये आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करती हैं। अपने दस्तावेज तैयार करने तथा पढ़ने के लिए वे जॉज (Jaws)का प्रयोग करती हैं। वे कहती हैं, कि वे उपलब्ध कहानियाँ, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं सुनने के लिए सी.डी. एवं टेप का भी प्रयोग करती हैं। उनके पास विकसित प्रौद्योगिकी युक्त सेल-फोन है जिसमें उन्होंने मोबाइल स्पीक सॉफ्टवेयर डाल रखा है। इसकी मदद से वे फोन के अतिरिक्त एस.एम.एस. व ई-मेल कर सकती हैं। वे फाइलों को ध्यानपूर्वक पढ़ती हैं तथा यथासम्भव अधिक से अधिक तथ्यों को याद रखने की कोशिश करती हैं ताकि फाइल दोबारा पढ़ने की आवश्यकता न पड़े। वे स्वयंसेवी वाचकों की सेवाओं के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहती हैं, ''उन्होंने भी मेरी सफलता में योगदान दिया है, उनके सहयोग के बिना मैं यहाँ तक नहीं पहुँच सकती थी।'' दस्तावेजों की सुगम पहचान के लिए वे फाइलों पर ब्रेल-लेबल चिपका लेती हैं। कभी-कभी सूचनाएं दर्ज करने के लिए वे डिक्टाफोन का प्रयोग भी करती हैं।

1996 से कंचन, पम्नानी एण्ड पम्नानी कम्पनी जो एडवोकेट व सॉलिसिटर्स की एक फर्म है, में एक हिस्सेदार हैं। कम्पनी के ग्राहकों में भारत में पूंजी लगाने वाले अनिवासी भारतीय, अन्तर्राष्ट्रीय विधि कम्पनियाँ, भारतीय वित्तीय संस्थाएं, बहुराष्ट्रीय निगम, प्राइवेट तथा सार्वजनिक न्यास,डॉट-कॉम तथा उच्च अभिजात वर्ग के व्यक्ति सम्मिलित हैं। सुश्री पम्नानी की ज्ञान-पिपासा ने उन्हें इन्टरनेट पर बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से सम्बद्ध दो पाठ्यक्रम करने के लिए प्रेरित किया।

सामाजिक रूप से भी वे उतनी ही सक्रिय हैं जितनी अपने व्यवसाय में। वे



पारिवारिक समारोहों में पूर्ण-तन्मयता से भाग लेती हैं। वे प्रजा नामक स्वयंसेवी संस्था की सदस्य हैं। यह संगठन समाज में स्थानीय प्रशासन से मिलकर काम करता है। वे ब्लाइण्ड ग्रेजुएट फोरम ऑफ इण्डिया की अवैतनिक सचिव हैं तथा एन.ए.बी., ब्लाइण्ड परसन्स एसोसियेशन (मुम्बई), मुम्बई बार एसोसियेशन एवं इनकार्पोरेटेड लॉ सोसाइटी की सदस्य हैं।

सुश्री पम्नानी के योगदान को पर्याप्त ख्याति व सम्मान प्राप्त हुआ है। एन.ए.बी. ने उन्हें 'नीलम कांगा एवार्ड' से सम्मानित किया। उन्होंने व्यवसाय तथा विश्राम और आनन्द के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत में लद्दाख से कन्याकुमारी तथा बाहर यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं दक्षिण पूर्व एशिया का व्यापक भ्रमण किया है। वे अंग्रेजी, हिन्दी तथा सिंधी सुगमतापूर्वक बोल सकती हैं और सरल फ्राँसिसी भाषा का ज्ञान भी उन्हें है। उन्होंने ट्रिनीटी कॉलेज ऑफ म्यूजिक, लन्दन से वक्तृता व नाटक के लिए ग्रेड-3 प्राप्त किया है तथा सार्वजनिक भाषण के लिए भी पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किये हैं। उनकी रुचियों में वाचन, तैरना, घूमना, भ्रमण तथा टिकट-संग्रह सम्मिलित हैं।

उनकी सफलता का श्रेय सकारात्मक दृष्टिकोण, परिश्रमशीलता, प्रत्येक नई चीज का अनुभव प्राप्त करने की इच्छा व हर व्यक्ति से सीखने को जाता है।

उनका कथन है, ''मेरे विकास व उपलब्धियों में समाज का भी योगदान है। मित्रों, सम्बन्धियों, मुवक्किलों, माता-पिता, शिक्षकों एवं अन्य अनेक लोगों ने मुझे सहयोग तथा प्रगति का अवसर दिया है।''

उनका विचार है कि दृष्टिबाधितों के प्रति लोगों के व्यवहार में परिवर्तन हुआ है। अब उन्हें समाज पर बोझ भी नहीं समझा जाता। परन्तु वे यह भी सोचती हैं कि इस व्यवहार के व्यापक विस्तार होने पर ही वास्तविक अर्थों में अवसर की समानता प्राप्त हो पाएगी।

•

# कृपाल सिंह कसैल
## प्रसिद्ध पंजाबी विद्वान व साहित्यकार

—मुक्ता अनेजा

**प्रो.** कृपाल सिंह कसैल की आयु 75 वर्ष से भी अधिक है तथा वे साठ से अधिक पुस्तकों के प्रतिष्ठित लेखक हैं। साहित्य व समाज कल्याण में आज भी उनकी गहरी रुचि है। उनका जन्म 10 मार्च, 1928 को जिला अमृतसर, पंजाब के कसैल नामक गाँव में हुआ था। अल्पायु में ही उन्हें पिता के स्नेह से वंचित होना पड़ा। पिता की मृत्यु के पश्चात कृपाल सिंह की माताजी ने अपनी इस इकलौती संतान को बड़े लाड़-प्यार से पाला। उनके संवेदनशील व्यक्तित्व पर स्वाधीनतापूर्व भारत में व्याप्त दुर्दशा तथा अराजकता ने गहन प्रभाव डाला। युवा कृपाल ने चुपचाप असंख्य व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय अनुभव आत्मसात किए, जिन्होंने उन्हें एक महान लेखक बनाया।

वे एक प्रतिभाशाली छात्र थे और एम. ए. करने के पश्चात उन्होंने सन् 1951 में एक कॉलेज में शिक्षण कार्य आरम्भ किया। वे न केवल अच्छे तथा लोकप्रिय शिक्षक थे अपितु पंजाबी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में सफल लेखक के रूप में भी प्रतिष्ठित थे वर्ष 1964 में दुर्भाग्य से गम्भीर नेत्र-रोग होने के फलस्वरूप वे पूर्ण दृष्टिबाधित हो गए। सभी उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। लुधियाना के क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भयग्रस्त, आहत तथा हताशा के चक्रवात से पीड़ित कृपाल सिंह सोचा करते थे कि आकस्मिक विकलांगता से वे किस प्रकार समझौता कर पाएंगे। उन्होंने कभी किसी सक्रिय दृष्टिहीन को न तो देखा था और न ही ऐसे उपायों के विषय में सुना था जिनके द्वारा वे अपनी प्रगतिशील बौद्धिक गतिविधियों को पहले



की तरह जारी रख सकें। वे ऐसे तरीकों अथवा रणनीति से भी अनभिज्ञ थे, जो विकलांगता के प्रति घोर उदासीन तत्कालीन समाज में उन्हें जीवन-यापन के अवसर प्रदान कर पाती। गहन निराशा के इस दौर में सौभाग्यवश उनकी मुलाकात डॉ. ई. एम. जॉन्सन से हुई। डॉ. जॉन्सन दृष्टिबाधित होने के बावजूद विकलांगता के क्षेत्र में सुपरिचित व्यक्ति थे। उन्हीं के परामर्श के कारण कृपाल सिंह को घोर अंधकार में आशा की कुछ किरणें दिखाई देने लगीं। इस तरह वे घातक निराशा से मुक्त होकर जीवन में सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ने लगे।

यह ठीक ही कहा गया है कि कठिनाइयों के भीतर ही सफलता के अवसर छुपे होते हैं। अपनी दृष्टि अक्षमता से हतोत्साहित हुए बिना, कृपाल सिंह शिक्षण एवं लेखन के क्षेत्र में प्रगति करते रहे। उन्होंने पंजाब सरकार के भाषा विभाग में आठ वर्षों तक सेवा की। तत्पश्चात प्रो. कसैल शिक्षा विभाग के अन्तर्गत शासकीय मोहिन्द्रा कॉलेज, पटियाला में सफलतापूर्वक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए सेवानिवृत्ति तक कार्यरत रहे। अथक लेखक प्रो. कृपाल सिंह पंजाबी में उच्च-स्तरीय सृजनात्मक तथा आलोचनात्मक कृतियों की रचना करते रहे। अपनी प्रसिद्ध रचना 'पुष्पवन' उन्होंने दृष्टिहीनता के पश्चात लिखी, जिसके लिए पंजाब सरकार ने उन्हें प्रतिष्ठित 'शिरोमनि साहितकार सम्मान' से विभूषित किया। 'वार्डनं 10' नामक अपनी रचना के कारण भी वे विख्यात हुए।

प्रो. कसैल के लेखन में शैली की परिपक्वता तथा विषय-वस्तु की गहनता के दर्शन होते हैं। सृजनात्मक लेखन के साथ-साथ उन्होंने पंजाबी साहित्य के इतिहास तथा साहित्यिक आलोचना पर बहुमूल्य योगदान दिया है। उनकी अनेक पुस्तकों को भारत के कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। पंजाबी साहित्य पर उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पंजाबी साहित - उत्पति ते विकास'' के दस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। 'पंजाबी साहित दा इतिहास' नामक रचना सम्बद्ध विषय की सर्वाधिक आधिकारिक पुस्तक समझी जाती है।

दृष्टिहीनता के बावजूद प्रोफेसर कृपालसिंह ने प्रतिष्ठित लेखकों की रचनाओं का पंजाबी में अनुवाद भी किया है और इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लेखक पूरनसिंह की अनेक पुस्तकों के अनुवाद के लिए उन्हें विशेष रूप से जाना जाता है। पूरनसिंह के लेखन के विभिन्न आयामों पर लिखी प्रो. कसैल की पुस्तकों से लेखक के रूप में पूरनसिंह की प्रतिभा की पुनर्स्थापना हुई है।

प्रोफेसर कसैल को अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार तथा सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। इनमें 'शिरोमनि साहितकार सम्मान' 1968 के अतिरिक्त पंजाबी साहित समिख्या बोर्ड द्वारा 'साहित शिरोमनि सम्मान' 1983, पंजाबी साहित सभा द्वारा 'बलराज साहनी सम्मान' 1993 तथा पंजाबी साहित अकादमी द्वारा प्रदत्त 'के. एस. धालीवाल सम्मान' 1993 सम्मिलित हैं। प्रो. कृपालसिंह केन्द्री पंजाबी लेखक सभा, पंजाबी

साहित अकादमी तथा पंजाबी साहित समिख्या बोर्ड जैसे प्रमुख पंजाबी साहित्यिक संगठनों से भी सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। सम्प्रति वे पंजाबी साहित अकादमी के उपाध्यक्ष हैं तथा पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की आजीवन फैलोशिप-प्राप्ति का गौरव भी उन्हें हासिल है।

प्रो. कसैल के व्यक्तित्व का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम दृष्टिबाधितार्थ संगठनों में उनका योगदान है। इसका प्रत्यक्ष लाभ भारतीय नेत्रहीन सेवक समाज तथा राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ संघ को प्राप्त हुआ है। वे दृष्टिहीनार्थ व्यावसायिक पुनर्वास प्रशिक्षण केन्द्र (VRTC) लुधियाना के प्रबन्धनमंडल के सदस्य भी हैं।

प्रो. कसैल के व्यस्त जीवन को सुखद तथा सृजनशील बनाने में उनकी पत्नी के सेवाभाव एवं सहृदयता का भी महत्वूपर्ण योगदान रहा है। उनका पारिवारिक जीवन सुखद और सामंजस्यपूर्ण रहा है। उनके चारों बच्चे प्रसन्नतापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

प्रो. कृपालसिंह कसैल दृष्टि-विकलांगता के पश्चात सक्रिय एवं सफल सेवा के 24 वर्ष पूरे कर 1988 में सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के पश्चात वे न केवल सतत लेखन अपितु समाज कल्याण के क्षेत्र में अपनी यथावत सक्रियता के फलस्वरूप व्यक्तिगत रूप से संतोषजनक तथा सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जीवन में उनकी श्लाघनीय उपलब्धियां इसं उक्ति का ज्वलंत प्रमाण हैं कि ''जीवन प्राय: वही बन जाता है जैसा हम उसे बनाते हैं।''

•



# गरीमेला सुब्रामण्यम
## प्रबुद्ध पत्रकार

—अंजलि सेनगुप्ता

गरीमेला के माता-पिता, सगे सम्बन्धियों तथा शिक्षकों के अनुसार शास्त्रीय गायन अथवा स्थानीय कॉलेज में अध्यापन व्यवसाय ही उनके लिये सर्वोत्तम था। परन्तु 45 वर्षीय गरीमेला सुब्रामण्यम ने समाज द्वारा दृष्टिबाधितों के लिये व्यावसायिक सीमांकन की परवाह कभी नहीं की।

आज वे 'द हिन्दू', चेन्नई के सहायक सम्पादक के रूप में तेज तर्रार तथा वैचारिक दृष्टि से स्पष्ट और सम्मानित व्यक्ति माने जाते हैं।

उनकी आजीविका निर्धारण की स्थिति आने से पहले ही दूसरे लोगों ने सोचा कि उन्हें ही इसका निर्णय करना है। विद्यालय में उनके शिक्षक हमेशा कहते कि उन्हें एक कुशल संगीतकार बनना चाहिये। उन लोगों ने उनके पिता को बताया कि यही व्यवसाय उनके लिए सर्वोत्तम रहेगा क्योंकि इसमें वे बहुत तरक्की कर सकते हैं। सौभाग्यवश गरीमेला के पिता उनकी भावनाओं को तरजीह देते थे। पिता ने उन्हें व्यावसायिक चुनाव का मौका दिया।

गरीमेला का सम्बन्ध तटीय आन्ध्र प्रदेश के एक किसान परिवार से है। परन्तु उनके पिताजी ने उन्हें तथा उनके भाई को महत्वपूर्ण निणर्य स्वयं करने का मौका दिया। गरीमेला व उनके भाई दोनों वंशागत कारणों से दृष्टिबाधित हैं।

दोनों भाइयों ने चैन्नई स्थित बधिर व दृष्टिहीनार्थ लिटिल फ्लावर कान्वेन्ट में

शिक्षा प्राप्त की। सुब्रामण्यम स्मरण करते हुए कहते हैं, ''विद्यालय हमारे लिये एक सहज अनुभव था क्योंकि सभी बच्चे दृष्टिहीन थे अथवा बधिर, किसी को भी कुछ अजीब नहीं लगता था।''

अपने शिक्षकों के व्यवहार के विषय में उनका विचार है कि उनकी सोच नियमित विद्यालयों के शिक्षकों से किसी प्रकार से भी भिन्न नहीं थी। संगीत में उनकी विशेष रुचि होने के फलस्वरूप शिक्षक उन्हें कुशल संगीतकार बनने की सलाह देते रहते थे। स्कूली शिक्षा पूर्ण कर सुब्रामण्यम ने चेन्नई के लॉयोला कॉलेज से इतिहास विषय लेकर बी.ए. किया। वे कहते हैं, ''लॉयोला मेरे लिए एक बिल्कुल ही नया अनुभव था, मैं पहली बार अजनबी लोगों से मिला था। इसके अतिरिक्त विकलांग छात्रों के लिये उपयुक्त सुविधाओं के अभाव में उन दिनों अध्ययन करना बहुत कठिन था।''

तत्पश्चात एम. ए. राजनीतिशास्त्र व एम. फिल. के लिए उन्होंने प्रतिष्ठित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे. एन. यू.) दिल्ली में अध्ययन किया। यहाँ का परिवेश भी टॉकिंग बुक अथवा वाचकों की सहायता से अध्ययन करने की दृष्टि से लॉयोला से कुछ भिन्न नहीं था। परन्तु जे. एन. यू. ने उनकी सोच पर बड़ा प्रभाव डाला। एकाकीपन की उनकी समस्या दूर हो गयी। वे कहते हैं, ''विश्वविद्यालय में राजनीतिक चर्चाओं का चलन था और दृष्टिबाधा आपके राजनैतिक अथवा आर्थिक मामलों सम्बन्धी ज्ञान को तो सीमित करती नहीं है।''

एम. फिल. के पश्चात सुब्रामण्यम आन्ध्रप्रदेश लौट गये और एक कॉलेज में शिक्षण कार्य करने लगे परन्तु इससे वे सन्तुष्ट नहीं थे तथा उनकी अन्तरात्मा उन्हें कुछ और करने के लिए कचोटती रहती थी।

जल्दी ही उन्होंने समझ लिया कि अपना कार्य करने के लिए इस कॉलेज में उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकती थीं। सम्भवत: जे.एन.यू. सरीखे सम्पन्न विश्वविद्यालय भी उन्हें उपयुक्त प्रौद्योगिकी उपलब्ध न करा पाते। सौभाग्यवश उन्होंने राजनीतिक थ्योरी में लन्दन स्कूल ऑफ इकॅनोमिक्स से पीएच. डी. करने का निश्चय किया और इंग्लैण्ड चले गये। पीएच. डी. समाप्त करने पर उन्हें 'द हिन्दू' से नौकरी का प्रस्ताव प्राप्त हुआ उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। गरीमेला को लेखन कार्य पसन्द था, क्योंकि पत्रकारिता बौद्धिक क्रियाकलापों से मिलती जुलती है।

नौकरी प्राप्त होने में कठिनाइयों की बात पूछने पर वे बताते हैं, ''प्राय: अच्छी नौकरियों की जानकारी मौखिक रूप से ही प्राप्त होती है। 'द हिन्दू' में नौकरी प्राप्त करने में मेरे छात्र जीवन से परिचित इसके लन्दन संवाददाता ने मुझे सहयोग दिया। इस समाचार पत्र के लिए पहले से ही एक दृष्टिबाधित व्यक्ति काफी वरिष्ठ पद पर काम कर रहा था। मेरी व्यावसायिक प्रगति एवं स्वावलम्बन की भावना निश्चित रूप



से एक महत्वपूर्ण कारक थी। फिर यह भी सच है कि 'द हिन्दू' अपनी कर्मचारी-हितकारी नीतियों के लिये बहुत समय से विख्यात है। अत: मेरी नियुक्ति को अनेक कारकों का सम्मिश्रण कहना अधिक उचित होगा।''

वे याद करते हैं, ''भारत लौटने के सम्बन्ध में जानकारी मिलने पर बहुत से लोगों को आशंका हुई थी। कार्यालय में यद्यपि सहकर्मियों से मुझे भरपूर सहयोग मिला परन्तु आगुन्तक मुझसे पहली बार मिलने पर कुछ अटपटा अनुभव करते थे। विकलांग लोगों के साथ पारस्परिक व्यवहार के दौरान वातावरण को बनाने हेतु पहल का उत्तरदायित्व सदा विकलांग व्यक्ति पर होता है।''

उनके काम पर दृष्टिबाधा के प्रभाव के विषय में पूछने पर श्री सुब्रामण्यम कहते हैं, ''मैं अपना काम दूसरों से अलग ढंग से करता हूँ। मैं इन्टरनैट पर सूचना एकत्र करने व रपट लिखने के लिए टेक्स्ट रिकॉगनिशन सॉफ्टवेयर जैसे सहायक उपकरणों का प्रयोग करता हूँ। इसके अतिरिक्त काम की प्रकृति हर तरह से दूसरे पत्रकारों की तरह ही रहती है।''

यद्यपि श्री सुब्रामण्यम अपने काम को सुगमतापूर्वक कर रहे हैं परन्तु कभी-कभी उन्हें शिक्षक की सरकारी नौकरी छोड़ने का खेद भी होता है। वे हँसते हुए कहते हैं, ''शायद जिन्दगी तब कहीं अधिक आसान होती। यद्यपि यहाँ स्पीच एनेबल्ड सॉफ्टवेयर कार्यालय की ओर से दिया गया है परन्तु मुझे नवीनतम घटनाओं की जानकारी रखनी पड़ती है व निरन्तर रूप से पढ़ना भी पड़ता है।''

श्री गरीमेला सुब्रामण्यम की पत्नी शुभा एक विशिष्ट शिक्षका हैं व उनकी एक बेटी है। वंशानुगत बाधा के कारण उन्होंने बेटी गोद लेने का निर्णय लिया।

''यद्यपि शुभा का परिवार हमारे परिवार से सहमत था, मगर मेरा परिवार असमंजस में था। सम्भवत: इसलिए कि शुभा एक स्वावलम्बी व नौकरीपेशा महिला है।''

वे मानते हैं कि गत वर्षों में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के विषय में जागरूकता बढ़ी है। ''भारतीय समाज प्रगति कर रहा है और हम महिलाधिकारों, मानवाधिकारों, बाल अधिकारों इत्यादि के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक जागरूकता देख सकते हैं।'' यह गरीमेला सुब्रामण्यम की मान्यता है।

•

# गीतावानी शमन्ना
## असंभव जिनके शब्दकोश में नहीं

—मुक्ता अनेजा

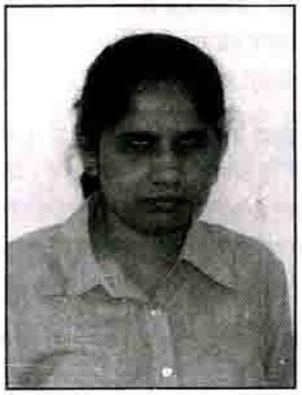

गीतावानी शमन्ना भारत की गिनीचुनी प्रतिभावान युवा दृष्टिहीन महिलाओं में से एक हैं, जिन्होंने अपने परिश्रम और कौशल से इस अवैज्ञानिक धारणा को निर्मूल साबित किया है कि दृष्टिबाधिता अभिशाप है।

उनका जन्म 29 जून, 1973 को बंगलोर में हुआ। वे रेटिनाइटिस पिगमेन्टोसा के फलस्वरूप तीन वर्ष की अल्पायु में दृष्टिहीन हो गयीं। पाँच वर्ष की अवस्था में उन्हें शहर के निकट ही डिवाइन लाइट स्कूल फॉर द ब्लाइंड में प्रवेश दिलाया गया। विद्यालय में उन्होंने दैनिक दिनचर्या, कौशल तथा ब्रेल लिपि में दक्षता प्राप्त की। वे स्वीकार करती हैं कि इस स्कूल ने उनके जीवन पर अमिट छाप छोड़ी। आत्मनिर्भरता का पाठ उन्होंने यहीं से पढ़ा। 11 वर्ष की आयु में गीता को एकीकृत शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सामान्य विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया, किन्तु उन्हें यहाँ कतिपय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। शिक्षक छात्रा की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताएं समझने में असमर्थ रहे। श्यामपट पर लिखी सामग्री को समझने के लिए शमन्ना अपने मित्रों का सहयोग लेती। उसे बीज-गणित तथा ज्यामिति जैसे विषयों को समझने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। दो साल बाद अपने भाई की सहायता मिलने तक उन्हें इन समस्याओं से जूझना पड़ा। गीता को गणित के जटिल प्रत्यय समझाने की विधियाँ उनके भाई ने धैर्यपूर्वक खोज ली थीं।

प्रारम्भिक शिक्षा के बाद युवती गीता ने स्वयं को कॉलेज व विश्वविद्यालय में



अधिक समर्थ पाया। वे वहाँ सक्षमतापूर्वक समायोजन कर सकीं, हालांकि दृष्टिबाधित विद्यार्थी के समक्ष आने वाली चुनौतियां वहाँ भी थीं। उपयुक्त वाचकों के उपलब्ध न रहने की समस्या प्रमुख थी। फिर भी उन्होंने राजनीति शास्त्र में एम. ए. किया। अब शुरू हुआ उपयुक्त रोजगार के लिए संघर्ष। शमन्ना शिक्षण को व्यवसाय बनाने के विरुद्ध थीं, अत: उन्होंने तकनीकी लेखन में व्यावसायिक पाठ्यक्रम पूर्ण करने का निर्णय लिया। यह एक नई किस्म की चुनौती थी। पाठ्यक्रम सम्पन्न होने पर रोजगार की तलाश आरम्भ हुई, पर वे दुविधाग्रस्त रहीं कि प्रार्थना-पत्रों में दृष्टिबाधा का हवाला दें अथवा न दें।

सर्वप्रथम कम्पनी जहाँ उन्होंने नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, बंगलोर की प्रसिद्ध सॉफ्टवेयर कम्पनी थी। साक्षात्कार के समय उन्हें उनकी मांग पर परीक्षा के लिए कम्प्यूटर उपलब्ध कराया गया। वे परीक्षा में सफल रहीं और नियुक्ति हो गयीं। चयनित होने के बाद उन्होंने इस कम्पनी में लगभग साढ़े तीन वर्ष तक नौकरी की। तकनीकी लेखक के रूप में काम करना शमन्ना को अच्छा लगा, परन्तु अब वे इस नौकरी से ऊबने लगी थीं अत: अति महत्वकांक्षी अधिक वेतन वाली नौकरी और नवीन अवसरों की खोज करने निकल पड़ीं।

कुछ समय तक उन्हें निराशा ही हाथ लगी। इसी दौरान एक दिलचस्प घटना यह हुई कि टेलीफोन पर बातचीत करने के लहजे से ही प्रभावित होकर उन्हें एक कम्पनी ने तत्काल नौकरी देने की पेशकश की, मगर जब गीता आवश्यक औपचारिकताएं पूरा करने कार्यालय पहुँचीं तो वहाँ की महिला प्रमुख ने दृष्टिबाधिता के कारण उन्हें नौकरी पर रखने से स्पष्ट मना कर दिया।

हिम्मत वाले हार नहीं मानते। गीता ने अपने इरादों का आकाश विस्तृत कर लिया। दृढ़-प्रतिज्ञ वह युवती अनुवाद के क्षेत्र में कूद पड़ी। जर्मन भाषा सीखने के लिए जर्मन चली गई। भारत लौटने पर उन्हें जर्मन अनुवादक के रूप में बंगलोर में सैप लैब्ज इंडिया नामक प्रसिद्ध जर्मन सॉफ्टवेयर कम्पनी में सन्तोषजनक नौकरी मिल गयी। हालांकि गीता शमन्ना अभी बत्तीस साल की ही हैं, परन्तु उनका वार्षिक वेतन सात लाख रुपये है।

अपनी पहचान स्थापित करते हुए इस युवती को एहसास हुआ कि सामान्य समाज में स्पर्धा के लिए दृष्टिबाधित व्यक्ति में अपेक्षाकृत अधिक धैर्य, ज्ञान व कौशल अपरिहार्य हैं। सफलता प्राप्ति और अच्छी नौकरी के लिए आत्म-विश्वास की ऊर्जा जरूरी है। गीतावानी शमन्ना की विजयगाथा तथा क्षमताओं से भरा कृतित्व विकलांग जीवन के लिए प्रेरणादायी बना रहेगा।

•

# श्री जगदीश लूथरा
## एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व

—मुक्ता अनेजा

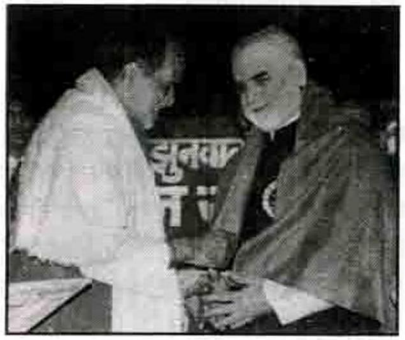

बस में एक बालक बैठा था जिसकी दुनिया में अंधकार भी था और अकेलापन भी। उसका एकमात्र साथी जेब में रखा कागज का एक टुकड़ा था जिस पर उसका नाम व पता लिखा था। माता-पिता ने अपने 10 वर्षीय पूर्ण दृष्टिहीन बेटे की जेब में यह टुकड़ा उसे मेरठ से दूर देहरादून के एक दृष्टिहीनार्थ आदर्श विद्यालय में भेजते समय रख दिया था। वह अनजान ध्वनियों के कोलाहल तथा अपरिचित भीड़ से घिरा था। नन्हें जगदीश ने बेरंग और असुरक्षित परिवेश का धैर्यपूर्वक सामना किया तथा अंधेरे को चीरते हुए अपने लिये प्रगति पथ का निर्माण किया।

जगदीश लूथरा का जन्म 15 जुलाई 1950 को मेरठ, उत्तर प्रदेश में हुआ। यद्यपि जगदीश जन्मान्ध हैं और बाल्यकाल से ही उन्हें परिवार से आवश्यक सहयोग प्राप्त नहीं हुआ लेकिन वे बैठे-बैठे भाग्य को कोसने वालों में से नहीं थे। इसके विपरीत उन्होंने अपनी इच्छा-शक्ति एवं जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के सहारे समाज में सम्मानित स्थान बनाया। श्री लूथरा ने पहले अन्ध महाविद्यालय, दिल्ली और फिर देहरादून स्थित दृष्टिहीनार्थ आदर्श विद्यालय से शिक्षा ग्रहण की। वहाँ से 10वीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात मेरठ कॉलेज, मेरठ में उच्च अध्ययन प्राप्त किया। किशोरावस्था में भी जगदीश लूथरा को परिवार, संबंधियों तथा पड़ोसियों द्वारा उपयुक्त सुविधाओं से वंचित रखा गया। बहुत से लोग उनसे बेहूदा व तर्कहीन प्रश्न पूछ लेते थे क्योंकि किसी दृष्टिबाधित का शिक्षा ग्रहण करना उनकी कल्पना से परे था। साथी छात्र तंग करने के लिये लूथरा के ब्रेल लिखने के उपकरण छिपा लिया



करते थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में भी जगदीश अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते रहे। अपने दृढ़ निश्चय तथा कठोर परिश्रम के आधार पर वे आगे बढ़े तथा अविश्वासग्रस्त और असहिष्णु समाज को उन्होंने अपनी योग्यता का लोहा मनवाने के लिये बाध्य कर दिया।

जगदीश लूथरा कॉलेज में बहुआयामी छात्र के रूप में उभरे। उन्होंने अनेक बार वादविवाद प्रतियोगिताओं, गोष्ठियों एवं शतरंज प्रतियोगिताओं में भाग लिया। परिणामस्वरूप उन्हें कॉलेज द्वारा सर्वोत्तम वक्ता, सर्वोत्तम शतरंज खिलाड़ी तथा सर्वोत्तम छात्र घोषित किया गया।

सन् 1974 में एम.ए. करने के पश्चात जगदीश जी के सामने रोजगार का जटिल प्रश्न उपस्थित हो गया तथा दृष्टिबाधा के फलस्वरूप स्वाभाविक चुनौतियों का आना भी अवश्यंभावी था। प्रारंभ में वे भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Administrative Service) अथवा कानूनी पेशे में जाना चाहते थे। भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा हेतु कुछ वर्ष पूर्व ही दृष्टिबाधितों को अनुमति मिली है, अत: यह उन दिनों सम्भव नहीं था। वकालत का विचार भी उन्हें त्यागना पड़ा। अपने मनपसंद व्यवसाय को न चुन पाने की टीस ने समाज में अपने लिये विशिष्ट स्थान बनाने की उनकी भावना को और अधिक मजबूत तथा गहरा किया।

लूथरा जी ने सन् 1972 में अंग्रेजी वार्तालाप शिक्षण के लिये रोजमेरी इंगलिश स्कूल (वर्तमान रोजमेरी इंस्टीट्यूट) आरंभ किया। यह दो विद्यार्थियों से शुरू हुआ था। अब तक इससे 3500 व्यक्ति लाभान्वित हो चुके हैं। 'रोजमेरी' से अध्ययन करने के पश्चात अनेक लोग भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी, पत्रकार, सेना अधिकारी, स्वतन्त्र बुद्धिजीवी तथा लेखाकार बन चुके हैं। रोजमेरी इंस्टीट्यूट अनेक प्रकार की सेवाएं उपलब्ध करा रहा है। आई. ए. एस., पी. सी. एस., बैंक सेवा, रेलवे परीक्षा तथा बी. एड. के लिये प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफल होने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कक्षाएं आयोजित करता है। श्री लूथरा अपने इंस्टीट्यूट में खेलकूद, विचार-गोष्ठी, वादविवाद, सांस्कृतिक गतिविधियों आदि का आयोजन भी करते हैं। यह संस्था न केवल पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षा प्रदान करती है अपितु छात्रों में आत्मविश्वास तथा योग्यता उत्पन्न करने के लिए उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिष्कृत भी करती है। वह युवा जिसे माता-पिता, भाई-बहन एवं समाज ने उपेक्षित किया था, आज एक लम्बा रास्ता तय कर चुका है। परावलंबी बनने की बजाय लूथरा जी भारत के एक सम्मानित नागरिक हैं तथा समाज को महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। उनकी वार्षिक आय सरकार में सर्वाधिक वेतन वाले वरिष्ठ अधिकारियों के बराबर है। जगदीश लूथरा आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा संस्थान के माध्यम से योग्य व्यक्तियों के प्रशिक्षण मात्र से ही संतुष्ट नहीं हैं। वे समाज में पिछड़े विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वास का प्रयास भी करते हैं। विशेषकर राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान

तथा राष्ट्रीय दृष्टिहीन संघ (महिला शाखा) में दिए गए उनके भाषणों से विकलांग लोगों के विभिन्न विषयों से संबद्ध उनकी रुचि ज्ञात होती है।

जगदीश जी अपने शहर में अनूठा उदाहरण बन कर उभरे हैं। अनेक राष्ट्रीय समाचारपत्रों ने उनकी उपलब्धियों पर समाचार तथा लेख प्रकाशित किये हैं। टेलीविज़न पर भी वे अनेक बार आ चुके हैं। आँखों-देखी, सहारा उ.प्र. तथा एन. डी. टी. वी. ने उनकी अनोखी उपलब्धियों के संबंध में कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं।

सुरजीत के रूप में उनकी समझदार, देखभाल करने वाली तथा सहयोगी पत्नी है। संस्थान का सामान्य प्रबंध वही संभालती हैं। दोनों सामाजिक रूप से सक्रिय जीवन बिता रहे हैं। इनके दो बच्चे हैं- एक बेटा तथा एक बेटी जो अभी अध्ययन कर रहे हैं। असली सोने की चमक कभी छिपी नहीं रह सकती। श्री लूथरा के बहुआयामी व्यक्तित्व ने अति विशिष्ट प्रतिष्ठानों से सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त किये हैं। लूथरा जी ने अखिल भारतीय गंधर्व महाविद्यालय मंडल, भातखंडे विद्यापीठ तथा लखनऊ संगीत समिति से योग्यता एवं मानद फैलोशिप प्राप्त की है। उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर द्वारा 'टी. पी. झुनझुनवाला पुरस्कार' तथा ऑल इंडिया कन्फेडरेशन द्वारा 'सहस्त्राब्दि पुरस्कार' प्रदान किए गए हैं। लूथरा जी व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत जीवन में सफलता व प्रसन्नता से ही संतुष्ट नहीं हैं, वे अपनी विशेषज्ञता को समाज में प्रसारित भी करते हैं।

उन्हें प्राय: भ्रमण, उत्सवों की तैयारी, जन्मदिन समारोह, इत्यादि के कार्यक्रम बनाते देखा जा सकता है। वे रोटरी क्लब, मेरठ के अध्यक्ष रह चुके हैं। वे उत्तर प्रदेश दर्शन परिषद के आजीवन सदस्य तथा युवा विज्ञापनकर्ता क्लब की सलाहकार समिति के सदस्य भी हैं। उनकी असीम ऊर्जा एवं सफलता की पृष्ठ-भूमि में उत्तरदायी कारकों को ढूंढ़ने के लिए हमें बाध्य होना पड़ता है। इस संबंध में उनका उत्तर है- ''धैर्य, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, दूसरे से लेने के बजाय देने की भावना ही उत्कर्ष के मूल मंत्र हैं।'' 'रोजमेरी इन्स्टीट्यूट' स्वामी विवेकानन्द के आदर्श वाक्य ''उठो, जागो, लक्ष्य की प्राप्ति से पूर्व मत रुको'' के अनुसार प्रतिभाओं को परिष्कृत कर रहा है। संस्थान के योग्य संस्थापक श्री जगदीश लूथरा अपने विश्वास से असंख्य लोगों को प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं, ''हमें दूसरों को आशावादी होने, हर एक को दूसरों से बिना किसी अपेक्षा के पूर्णशक्ति तथा ऊर्जा के साथ कठोर परिश्रम करने के लिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना चाहिए। हमें वर्तमान को जीना चाहिए, भूतकाल को भूल जाना चाहिए तथा अधिक उज्जवल भविष्य के विषय में सोचना चाहिए।''

क्रूर समाज से उपेक्षित लूथरा जी वास्तव में जीवन में महान विजेता बन कर उभरे हैं।

•



# ज्योतिन्द्र वी. मेहता

## मुख्यधारा में

—प्रिया वर्धन

आई. बी. एम. ग्लोबल सर्विस, इण्डिया द्वारा बंगलोर में 'मेनफ्रेम' की एक परियोजना प्राप्त करने की प्रक्रिया प्रगति पर थी। उसी समय एक व्यक्ति साक्षात्कार के लिए आया। इसके अन्त में साक्षात्कार अधिकारी ने कहा, ''हमें लगता है कि आप इस काम के लिए सर्वोत्तम व्यावसायिक हैं।'' कम्पनी चाहती थी कि ज्योतिन्द्र उसका प्रबन्ध सम्भाले तथा कम्पनी को परामर्श दे। उन्होंने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस काम के परिणामस्वरूप ज्योतिन्द्र वी. मेहता को भारत में आई. बी. एम. 'मेनफ्रेम हाई एण्ड टैक्निकल कम्पीटेन्सीस' का नेतृत्व करने का अवसर प्राप्त हो गया। तत्पश्चात उन्हें अन्य परियोजनाएं सौंपी गईं, परन्तु उनका कहना है, ''पुणे में रहते हुए भी बंगलोर का 'मेनफ्रेम' मेरे दिल में रहता है''। ज्योतिन्द्र वी. मेहता ने आई. बी. एम. मेनफ्रेम में उपलब्ध 'सॉफ्टवेयर माइग्रेशन टूल्स' पर एक शोधपत्र भी लिखा।

ज्योतिन्द्र मेहता आई. बी. एम., इण्डिया में सन् 1997 से सेवारत हैं तथा सम्प्रति वे आई. बी. एम. के पुणे स्थित कार्यालय में एडवाइजरी सॉफ्टवेयर इन्जीनियर के रूप में कार्यरत हैं।

उनका जन्म भावनगर, गुजरात के एक मध्यमवर्गीय परिवार में 6 दिसम्बर, 1948 को हुआ। ज्योतिन्द्र की दृष्टिबाधा की जानकारी मिलने पर उनका परिवार आरम्भ में व्यथा, आघात और अविश्वास के कुचक्र में फंस गया। वे रेटीनाइटिस पिगमेन्टोसा से ग्रस्त थे परन्तु वयस्क होने तक उन्हें हल्का सा दिखाई देता था। सतत

प्रयास से ही वे सम्भावित निराशा व दिशाहीनता के कुचक्र से बच पाए तथा अपने परिवार और सम्बन्धियों का सहयोग प्राप्त कर पाए। परन्तु दृष्टिबाधा के कारण वे दोस्तों के साथ बाहर घूमने फिरने तथा पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियों में भाग लेकर आनन्दित होने जैसे अनुभवों से वंचित ही रहे।

यद्यपि स्कूल और फिर कॉलेज में वे विज्ञान तथा गणित का अध्ययन करना चाहते थे लेकिन अनुमति न मिलने की वजह से उन्हें मानविकी पाठ्यक्रम में अध्ययन करना पड़ा। उन्होंने अर्थशास्त्र से एम. ए. किया। दृष्टिबाधित छात्रों के लिए पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में ज्योतिन्द्र कॉलेज में प्रशंसनीय अंक प्राप्त नहीं कर पाए जिसका उन्हें खेद है। वे कहते हैं, ''मैंने ब्रेल तथा दृष्टिबाधितों के लिए अपरिहार्य कौशल बाद में चल कर सीखे।''

शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात ज्योतिन्द्र ने रोजगार अवसरों की खोज शुरू की। लोग उनकी शैक्षिक योग्यता की प्रशंसा तो करते थे परन्तु इसके बावजूद भी उन्हें नौकरी नहीं मिल पा रही थी। विकलांगों के लिए स्थानीय विशिष्ट रोजगार कार्यालय से उन्हें कोई सहायता नहीं मिली तथा जिन सरकारी संस्थाओं में भी वे गये, उनके प्रार्थनापत्र पर ध्यान ही नहीं दिया गया। दुर्भाग्यवश उनका परिवार भी उन्हें नौकरी मिलने की आवश्यकता एवं महत्व को नहीं समझ पा रहा था। रोजगार न मिलने के कारणों का विश्लेषण करने के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे, ''मेरा विश्वास है कि जो अनुभव मुझे 30 वर्ष पहले हुए उन्हें तत्कालीन समाज में शिक्षित व्यक्तियों की सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती बेरोजगारी के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।'' 1978 में ज्योतिन्द्र तथा उनका परिवार संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये जहाँ 1980 में उन्होंने जॉन्स हाकिन्स विश्वविद्यालय के 'मैरीलैण्ड कम्प्यूटर सैन्टर' से कम्प्यूटर कार्यक्रम निर्माण में डिप्लोमा किया। एम. सी. आई. टेली कम्युनिकेशन में पुनर्वास रोजगार सेवा की मदद से नौकरी भी शीघ्र ही मिल गई। वहाँ उन्होंने अगले 12 वर्ष तक सेवा की। प्रारम्भ में उनके सहकर्मी उनके कौशल को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे परन्तु इन सबके बावजूद अगले 12 वर्षों में उन्हें कोई पदोन्नति नहीं दी गई। वे सोचते हैं, ''दृष्टिहीन कर्मचारियों की योग्यता में पर्याप्त विश्वास की कमी थी। साथ ही वाहनचालन में अक्षमता के फलस्वरूप मैं अपने दृष्टिवान सहकर्मियों की भाँति न तो समान उत्तरदायित्व ले पाता था और न ही उनके समान उत्पादकता में योगदान दे पाता था। सम्भवत: इन्हीं सब कारणों के परिणामस्वरूप मैं अपने एम. सी. आई. अधिकारियों में अपने प्रति आरम्भिक आश्चर्य को पर्याप्त विश्वास में परिवर्तित करने और पदोन्नति प्राप्त करने में असमर्थ रहा।''

ऐसी परिस्थिति में भी ज्योतिन्द्र का धैर्य, परिश्रमशीलता तथा विश्वास कभी नहीं डगमगाया। वे सूचना प्रौद्योगिकी में अध्ययन करते रहे तथा उन्होंने जार्ज वॉशिंगटन विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका से एम. एस. (इनफॉर्मेशन



टैक्नोलोजी) किया।

श्री मेहता 1997 में भारत लौट आए और तभी से आई. बी. एम. इण्डिया में सेवारत हैं। उनके बहुमूल्य कार्य को पर्याप्त प्रशंसा भी मिली है। वे कहते हैं, ''मुझे प्रतीत होता है कि नियोक्ताओं के व्यवहार में अन्तर का कारण कार्य विकल्पों में लचीलापन तथा आई. बी. एम. निगम में अत्यधिक पारदर्शी कार्यप्रणाली है। भारत में मेरा समायोजन अत्यन्त सन्तोषजनक रहा है।''

उनका कार्यक्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी तक सीमित नहीं है। उन्होंने स्वयंसेवी क्षेत्र में भी योगदान दिया है। एन. ए. बी., कर्नाटक शाखा में तकनीकी परामर्शदाता के रूप में दृष्टिहीनों के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र आरम्भ करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे वर्ष 2002-2004 तक इस संगठन के उपाध्यक्ष भी रह चुके हैं। सूचना प्रौद्योगिकी तथा विकलांगता क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय योगदान के लिए एन. सी. पी. ई. डी. पी. ने वर्ष 2004 में उन्हें 'शैल हेलन केलर पुरस्कार' प्रदान किया।

श्री ज्योतिन्द्र वी. मेहता का विचार है कि सम्पूर्ण देश में उच्च तकनीकी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। उनकी सोच है कि ''मैंने अनुभव किया है कि यदि जनता को किसी अवधारणा का स्थूल प्रमाण मिल जाए तो दृष्टिबाधित व्यक्तियों के प्रति उनके व्यवहार में परिवर्तन लाना कठिन नहीं होता। हाँ, हमारे समाज में व्याप्त परम्परागत निष्क्रयता को परास्त करना एक गम्भीर चुनौती अवश्य है।'' वे कहते हैं, ''नवीन आर्थिक परिवेश में दृष्टिबाधितों को शिक्षा एवं रोजगार के बेहतर अवसर निश्चित रूप से प्राप्त हैं।''

ज्योतिन्द्र वी. मेहता को जीवनसाथी ढूंढ़ने में कठिनाई अवश्य हुई। उन्होंने उर्वशी से विवाह किया जो शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त हैं। वे कहते हैं, ''यह जानकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि मुम्बई में एक दृष्टिहीन महाशय द्वारा संचालित उद्योग इकाई में कार्य-अनुभव के फलस्वरूप उर्वशी तथा उनके परिवार को दृष्टिबाधितों के विषय में पर्याप्त जानकारी थी।'' उनका एक बीस वर्षीय बेटा है।

श्री ज्योतिन्द्र मेहता का देशवासियों, विशेषकर दृष्टिबाधित नागरिकों के लिए सन्देश है, ''चाहे दृष्टिवान हो अथवा न हो, सभी के व्यक्तित्व के गुणों का समानता के आधार पर आदर करें तथा सभी से अपेक्षाएं रखें। विकलांग व्यक्तियों के साथ पूर्णत: वैसा ही व्यवहार न करें जैसा कि गैर विकलांगों के साथ करते हों। विकलांग व्यक्तियों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु परिवर्तन के लिए तत्पर रहें।''

# दिलीप लायल्का
## उच्चतर लक्ष्योन्मुख

—अंजलि सेनगुप्ता

वे कोलकाता में दो व्यापार सम्भालते हैं, अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक हैं तथा बहुत से पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। भारत का प्रथम दृष्टिबाधित चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट (C.A.) होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है।

आत्मनिर्भर दिलीप के जीवन पर दृष्टिबाधा कोई कुप्रभाव नहीं डाल सकी। वास्तव में उनका जीवन दूसरों के लिए प्रेरणा का सतत स्रोत बन गया है। अपने उदाहरण के माध्यम से वे दूसरों को विश्वास, स्वावलम्बन, दृढ़-निश्चय एवं उद्यमशीलता का अर्थ व महत्व बताते हैं।

उनका जन्म 30 दिसम्बर, 1958 को हुआ था जन्म से ही रेटिनाइटिस पिगमेन्टोसा के कारण उनकी दृष्टि क्षीण थी। वह क्षीण से क्षीणतर होती गई। फलस्वरूप बालक दिलीप स्कूल में श्यामपट्ट पर लिखी सामग्री नहीं पढ़ पाते था। छठी कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते वे पूर्ण दृष्टिहीन हो गए तथा उन्हें अपना प्रश्नपत्र दूसरे छात्रों से पढ़वाने की जरूरत पड़ने लगी। आठवीं कक्षा तक पहुँचे तो उत्तर लिखवाने के लिए भी श्रुतलेखक का सहारा लेना पड़ा।

लायल्का कहते है, "सौभाग्यवश मेरे मित्र सातवीं कक्षा के पश्चात कक्षा-कक्ष में मेरे साथ बैठते तथा सारी शिक्षण सामग्री की एक प्रतिलिपि मेरे लिए भी बनाते। घर पहुँचकर मैं उस सामग्री को किसी से पढ़वा लेता। मुझे सदैव श्रुतलेखक भी मिलता रहा।"



दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात उन्होंने अपने पिता से चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट बनने की इच्छा प्रकट की। वास्तव में इस इच्छा के प्रेरणास्रोत भी उनके पिता ही थे। उनके पिता, चाचा, जीजा तथा कई सम्बन्धी सी.ए. हैं। उनके अनुसार, "मेरा परिवार इस विचार का सख्त विरोधी था। उनकी सोच यह थी कि दृष्टिबाधा के कारण मैं ऐसे पाठ्यक्रम को कभी पूरा नहीं कर पाऊँगा।" परन्तु दिलीप ने न केवल बी. कॉम. के बाद सी. ए. का कोर्स पूरा किया अपितु उल्लेखनीय सफलता के साथ ऐसा किया। लगभग तीन वर्ष में सी. ए. कोर्स समाप्त कर 1983 में उन्होंने भारत का प्रथम दृष्टिबाधित सी. ए. होने तथा एक नया कीर्तिमान स्थापित करने का गौरव प्राप्त किया। बाद में उन्होंने एलएल. बी. की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

उनके प्रवेश के समय अकाउन्टेन्सी संस्थान में दृष्टिबाधितों के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। वे बताते हैं, "यद्यपि संस्थान ने मुझे श्रुतलेखक देने की बात मान ली परन्तु शर्त लगाई कि वह वाणिज्य (B.Com.) पृष्ठभूमि से न हो। बी.कॉम वाले छात्र को श्रुतलेखक के रूप में इस्तेमाल करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए मुझे बड़ी मेहनत करनी पड़ी।"

दिलीप की सहायता के लिए वाचक भी उपलब्ध था। साथ ही वे कक्षा में अध्यापकों के लेक्चर को रिकार्ड कर लेते तथा बाद में सुनकर याद करते थे।

वर्ष 1985 में दिलीप लायल्का के पिता ने अखबार में आरक्षित क्षेणी के लिए पेट्रोल पम्प का विज्ञापन पढ़ा तथा उन्हें प्रार्थनापत्र भेजने के लिए प्रोत्साहित किया। एक बार फिर परिवार व सम्बन्धियों की ओर से विरोध के स्वर मुखर हो उठे। तर्क दिए जाने लगे कि दिलीप द्वारा नकदी और वह भी लाखों रुपये की,का लेनदेन जोखिम भरा हो सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग दृष्टिहीनता का लाभ उठाने की कोशिश भी कर सकते हैं। दिलीप का उत्तर था, " यदि मैं 10 से 12 लाख कमाता हूँ, इसमें से दो-तीन लाख का नुकसान हो जाए, फिर भी मुझे कुल मिलाकर फायदा ही होगा।" साथ ही उन्होंने सलाह दी कि हमें मानव प्रकृति में अधिक विश्वास रखना चाहिए। उनका तर्क सशक्त था, सम्बन्धियों का विरोध धीरे-धीरे शान्त हो गया तथा दिलीप को पेट्रोल पम्प आवंटित हो गया।

अनवर शाह रोड पर स्थित उनका 'प्रिंस सर्विस स्टेशन' नामक पेट्रोल पम्प कोलकाता के सर्वाधिक लाभ कमाने वाले पम्पों में से एक है। एक बार तो इसकी वार्षिक ब्रिकी लगभग 15 करोड़ रुपये थी।

श्री लायल्का कोलकाता में एक प्रसिद्ध अकाउन्टेन्सी फर्म 'जे. लायल्का एण्ड कम्पनी' के एक सम्मानित हिस्सेदार हैं।

प्रश्न उठता है कि वे अपने दो-दो व्यापार कैसे सम्भालते हैं ? अपनी दिनचर्या बताते हुए वे कहते हैं, "मैं प्रतिदिन प्रात:काल 8.00 बजे से 10.30 बजे तक

पेट्रोल पम्प पर रहता हूँ। जितना पेट्रोल बेचा गया है, उसकी जानकारी लेता हूँ, प्राप्त धनराशि को बैंक भेजता हूँ, बिक्री सम्बन्धी समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर दर्ज कराता हूँ तथा हिसाब-किताब से सम्बद्ध सारी कानूनी प्रविष्टियाँ उपयुक्त पंजिकाओं में दर्ज कराता हूँ। इससे मुझे आवश्यक जानकारी मिलती रहती है तथा प्रबन्धन में भी सुविधा होती है।

पम्प छोड़ने से पहले मैं सुनिश्चित कर लेता हूँ कि सूचना-बोर्ड पर सूचनाओं का नवीनीकरण कर दिया जाए, पेट्रोल की आवश्यक खेप के लिए व्यवस्था हो जाए तथा पूरे दिन के लिए उपयुक्त आदेश दे दिए जाएँ। ''

तत्पश्चात श्री लायल्का 11 बजे से करीब 6 बजे तक कार्यालय में किसी भी सी. ए. की भाँति काम करते हैं । उनकी कम्पनी अनेक प्रसिद्ध निगमों एवं व्यक्तियों को सेवाएं प्रदान करती है। उनके ग्राहकों के लिए उनकी दृष्टि बाधा कोई मुद्दा नहीं है। सौभाग्यवश उनके कर्मचारी रोजमर्रा का काम ध्यानपूर्वक तथा समर्पण की भावना से पूरा करते हैं।

अभी उनका कार्य समाप्त नहीं हुआ। 7.00 बजे से 9.30 बजे तक दोबारा पेट्रोल पम्प पर रहकर दिनभर की जानकारी लेते हैं, वित्तीय मामलों को समझते हैं तथा पम्प को अगले दिन के लिए तैयार करवाते हैं।

श्री दिलीप लायल्का का व्यस्त कार्यक्रम उनकी अभिरुचियों में बाधक नहीं बनता है। वे पत्रिकाओं के लिए निरन्तर लिखते तथा गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। तभी 'छपते-छपते' नामक हिन्दी समाचारपत्र के सम्पादक ने उनसे सम्पर्क किया। ''मैं इसमें एक स्तम्भ लिखने लगा 'आपके प्रश्न हमारे उत्तर' जो आयकर से सम्बद्ध था।'' यह क्रम डेढ़ वर्ष तक चला और उसके बाद सम्पादक महोदय ने लायल्का को इस विषय पर पुस्तकें लिखने की सलाह दी।

यह विचार उन्हें उपयोगी प्रतीत हुआ। फलत: अब तक वे सह-लेखक के रूप में आयकर सम्बन्धी चार पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। 'प्रेक्टिकल गाइड टु वी डी आई एस' 1997, वी डी आई एस नियमों एवं उपनियमों पर एक श्रेष्ठ पुस्तक समझी जाती है। उनकी हिन्दी पुस्तक 'कैसे सुलझाएं आयकर समस्याएं' को केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है। उनकी एक और पुस्तक 'हाउ टु हैण्डल इन्कम टैक्स प्रॉब्लम्स' बहुत लोकप्रिय है, इसके अब तक 13 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

नवीन सूचनाओं को सम्मिलित करते हुए , एक के बाद दूसरा संस्करण प्रकाशित करने की प्रक्रिया काफी कठिन होती है। श्री लायल्का हर सप्ताह आयकर सम्बन्धी पत्रिकाएं लेते हैं जिनमें देशभर के उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए आयकर से सम्बद्ध पुराने, नये तथा असाधारण केसों के निर्णय शामिल होते हैं। इसके



अतिरिक्त वे विषय से सम्बद्ध अन्य सूचनाओं की भी जानकारी प्राप्त करते रहते हैं-- नये परिपत्र (Circulars), वित्त अधिनियम तथा आयकर संशोधन । उनकी कानून सम्बन्धी जानकारी इस प्रक्रिया में बड़ी सहायक सिद्ध होती है।

श्री दिलीप लायल्का दो वाचकों की सेवाएं लेते हैं जो उनके लिए आवश्यक सामग्री के अध्ययन में सहायता करते हैं। इस तरह उनकी उपयोगी सामग्री में वृद्धि होती रहती है। मार्च से जून तक ये सहायक 4 से 5 घण्टे प्रतिदिन काम करते हैं तथा संसद द्वारा पारित होने के पश्चात वित्त विधेयक इत्यादि से सम्बद्ध सूचनाओं को पाण्डुलिपि में संकलित करते हैं। राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति मिल जाने के पश्चात वित्त-विधेयक, वित्त-अधिनियम का रूप धारण कर लेता है। तत्पश्चात लायल्का एवं उनका दल यथाशीघ्र नया संस्करण प्रकाशित करने की कोशिश करते हैं।

श्री लायल्का को अपने जीवट तथा स्फूर्ति के लिए अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। कोलकाता के एक रोटरी क्लब द्वारा सन् 2000 में उन्हें दृष्टिहीन कल्याण क्षेत्र में योगदान के लिए 'पॉल हेरिस' टाइटल प्रदान किया गया तथा वर्ष 2002 में राष्ट्रपति द्वारा 'उत्कृष्ट व्यावसायिक विकलांग व्यक्ति' का पुरस्कार दिया गया। भारतीय तेल निगम द्वारा भी उन्हें कई पुरस्कार प्रदान किए जा चुके हैं। इनमें निगम के कोलकाता संभागीय कार्यालय द्वारा श्री लायल्का को 'गोल्ड सर्कल' सदस्य बनाना तथा 2004 में सर्वाधिक विकास करने वालों की सूची में दूसरे स्थान पर आने के लिए प्रदत्त अवार्ड प्रमुख हैं।

श्री लायल्का एन. ए. बी. की पश्चिमी बंगाल शाखा के पूर्व उपाध्यक्ष तथा वर्तमान में महासचिव हैं। वे वेलफेयर सोसायटी फॉर द विजुअलि हैण्डीकैप्ड के भी महासचिव हैं।

उनके दो बच्चे हैं तथा दाम्पत्य जीवन सुखद है। उनका विवाह माता-पिता की इच्छानुसार किया गया है तथा उनकी पत्नी ने स्वयं को इसके लिए भली-भाँति मानसिक रूप से तैयार किया। वे कहती हैं, ''कठिनाई तो हुई परन्तु दिलीप एक सामान्य व्यक्ति हैं। वे अत्यधिक स्वावलम्बी व्यक्ति हैं तथा अपना ध्यान भली-भाँति रखते हैं।''

•

# दीपक नरेन्द्र मोतीवाला

## प्रतिष्ठित प्रतिवक्ता

—मुक्ता अनेजा

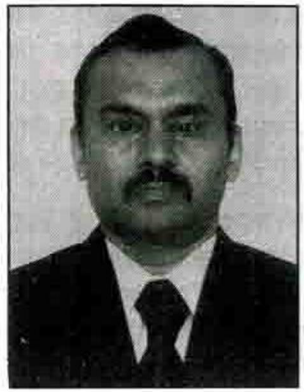

एक प्रतिभाशाली छात्र, प्रभावशाली प्रतिवक्ता तथा प्रसिद्ध विधि कम्पनी के स्वामी, दीपक मोतीवाला ने अनेक बार अपने उदाहरण से यह सिद्ध कर दिया है कि इच्छा-शक्ति तथा दृढ़-निश्चय के बल पर किसी भी विकलांगता को परास्त करना सम्भव है।

9 सितम्बर, 1949 को जन्मे दीपक की नेत्र-ज्योति, दृष्टि-पटल विच्छेदन (Retinal Detachment) के फलस्वरूप बचपन में ही जाती रही। वे नौ वर्ष की आयु तक पूर्ण दृष्टिबाधित हो चुके थे।

उन्होंने अपनी शिक्षा एक मराठी स्कूल से शुरू की। चौथी कक्षा के बाद उनकी शिक्षा में कुछ समय तक दृष्टिहीनता के फलस्वरूप बाधा उत्पन्न हुई परन्तु शीघ्र ही उन्हें डा. राजेन्द्र टी. व्यास से मार्गदर्शन प्राप्त होने लगा। दीपक ने ब्रेल सीखकर न्यू एक्टिविटी नामक स्कूल में जाना आरम्भ कर दिया। उस समय एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत अध्ययन कर रहे छात्रों के लिए ब्रेल सामग्री उपलब्ध होना बहुत कठिन था। दीपक को भी इस समस्या का सामना करना पड़ा। सौभाग्यवश उनके माता-पिता ने उनको सहयोग दिया और उनके अतिरिक्त दीपक के भाई-बहन भी उनके अध्ययन में सहायता करते थे। उनके पिता ने एक शिक्षक भी नियुक्त कर दिया जो वाचन भी करते थे। इसके अलावा दीपक ने ब्रेल में नोट्स लेना सीखा, जिससे उन्हें अपने अध्ययन में बहुत मदद मिली।



उच्चतर माध्यमिक स्तर की परीक्षा में उन्होंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की और उसके बाद मुम्बई के प्रसिद्ध सेंट जेवियर्स कॉलेज से बी. ए. इकॅनोमिक्स ऑनर्स किया। कॉलेज में उन्हें वाचन सामग्री सुगमतापूर्वक प्राप्त होने लगी। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय में इकॅनोमिक्स में प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा प्रतिष्ठित 'जेम्स टेलर' पुरस्कार हासिल किया।

दीपक के अनेक सम्बन्धी प्रतिवक्ता (सॉलिसिटर्स) थे। सम्भवत: इस तथ्य तथा उनकी अपनी रुचि के फलस्वरूप विधि व्यवसाय ने उन्हें बाल्यकाल से ही आकर्षित किया था। उनके मन की गहराइयों में एक दिन न्यायाधीश अथवा प्रतिवक्ता बनने का सपना पनप रहा था। इसी उद्देश्य के मद्देनजर उन्होंने गवर्नमेन्ट लॉ कॉलेज, मुम्बई में एलएल.बी. के लिए दाखिला लिया। सन् 1971 में उन्हें वर्ष का सर्वोत्तम छात्र होने के कारण रोटरी पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्होंने एलएल.बी. के हर वर्ष में प्रथम श्रेणी प्राप्त करते हुए सन् 1973 में एलएल.बी. पूर्ण की। ब्रेल में विस्तृत नोट लेने की आदत और अबाध गति से लक्ष्य की ओर बढ़ने के दृढ़ निश्चय के कारण ही वे वांछित उद्देश्य में सफल हुए।

एलएल.बी. समाप्त करने के पश्चात उनकी इच्छा प्रतिवक्ता बनने की हुई। प्रतिवक्ता की परीक्षा देने से पूर्व किसी को भी इस क्षेत्र में कुछ समय के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है। प्रभावशाली शैक्षिक पृष्ठभूमि के बावजूद उन्हें कोई प्रतिवक्ता प्रशिक्षणार्थी के रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं था। बहुत धैर्य तथा परिश्रम के बाद बम्बई कांग्रेस कमेटी की तत्कालीन अध्यक्ष सुश्री रजनी पटेल तथा एक प्रसिद्ध विधि कम्पनी के पार्टनर श्री जे.पी. ठक्कर के हस्तक्षेप से उन्हें सफलता मिली। उनके बाद वे मुल्ला एण्ड मुल्ला और क्रेगी ब्लंट एण्ड कैरो विधि कम्पनी में प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे।

दीपक मोतीवाला ने अपना लोहा मनवाते हुए आवश्यक प्रशिक्षण के पश्चात परीक्षा में सफलता प्राप्त की तथा प्रतिवक्ता बनने का अपना स्वप्न पूरा किया। इतना ही नहीं इस परीक्षा में प्रथम आने के लिए उन्हें 'इनकारपोरेटिड लॉ सोसायटी' का पुरस्कार तथा टैक्सेशन में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के लिए 'टीकमदास-द्वारकादास' पुरस्कार भी प्रदान किए गए। उसके पश्चात उन्होंने सन् 1975 से उसी कम्पनी में काम शुरू कर दिया। जे.पी. ठक्कर के प्रोत्साहनपूर्ण रवैये ने दीपक को अपने भीतर छिपी सर्वोत्तम क्षमता को प्रदर्शित करने के लिए प्रेरित किया। वे अपने वरिष्ठ प्रतिवक्ताओं तथा ग्राहकों की कसौटी पर खरे उतरे। उनके सहकर्मियों ने भी भरपूर सहयोग दिया तथा उनकी प्रतिभा को सराहा। उन्होंने इस कम्पनी के साथ 1982 तक काम किया।

सन् 1982 में वे नीना नामक महिला अधिवक्ता से मिले। शीघ्र ही उनका परिचय घनिष्ठता में बदला और 1983 में वे एक-दूसरे के जीवन साथी बन गए। सन्

1985 में उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई जो अब माता-पिता को सहयोग देने के लिए तैयार है।

नौ वर्ष तक एक प्रसिद्ध विधि कम्पनी में सफल प्रेक्टिस के बाद उन्होंने स्वयं की विधि कम्पनी स्थपित करने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप नीना तथा दीपक ने अप्रैल, 1984 में अपने सम्मिलित प्रयास तथा संयुक्त प्रतिभा के बल पर मोतीवाला एण्ड कम्पनी की स्थापना की। आज यह कम्पनी काफी ख्याति अर्जित कर चुकी है तथा विधि मामलों में कुशलता व उपयोगी परामर्श के लिए ग्राहकों में अपनी अलग पहचान बना चुकी है।

यह कम्पनी समुद्री कानून, बीमा तथा कस्टम सम्बन्धी मामलों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसका कारोबार तेजी से बढ़ रहा है और वार्षिक लेन-देन लगभग चालीस लाख रुपये है तथा इसमें सात कर्मचारी कार्यरत हैं। जहाजरानी तथा बीमा के मामलों का प्रतिवक्ता होने के कारण श्री मोतीवाला को विदेशों से भी कई केस मिलते हैं। काम के सिलसिले में वे कई बार विदेश यात्रा कर चुके हैं। वे 1990 तथा 2001 में इंग्लैण्ड भी गए थे। इसके अतिरिक्त वे सिंगापुर तथा हांगकांग भी जा चुके हैं।

स्वाभाविक रूप से उन्हें कई अवार्ड तथा पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। उत्कृष्ट दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए 1987 में उन्हें ए.आई.सी.बी. द्वारा स्थापित शताब्दी अवार्ड भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति द्वारा दिया गया। सन् 1991 में जाइन्ट्स फेडरेशन ऑफ इण्डिया ने उन्हें विधि क्षेत्र में श्रेष्ठ सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया। वर्ष 2000 में रोटरी क्लब ने उन्हें श्रेष्ठ व्यावसायिक उपलब्धियों तथा योगदान के लिए वोकेशनल सर्विस अवार्ड प्रदान किया।

वर्षों की निरन्तर मेहनत, व्यवसाय के प्रति ईमानदारी तथा कानूनी मामलों में साफगोई की बदौलत ही श्री मोतीवाला वर्तमान ऊँचाइयों को छू सके हैं।

उनकी स्पष्ट मान्यता है कि समाज द्वारा दृष्टिबाधितों को शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र में समान अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए ताकि उनकी अधिकतम क्षमता का दोहन एवं सदुपयोग किया जा सके। समाज को उनका संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परामर्श है--"दान की इमारतें नहीं अपितु अवसर के सेतु तैयार करें।"

•



# नफीसा परवेज बोहरीवाला
## नए शिखरों की खोज

—मुक्ता अनेजा

नफीसा परवेज बोहारीवाला समस्त दृष्टिबाधित एवं दृष्टिवती महिलाओं के लिए समान रूप से प्रेरक शक्ति हैं। लगभग पूर्ण दृष्टिबाधित होने के बावजूद वे एक प्रसिद्ध बैंक में प्रबन्धक के रूप में अनेक चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्वों का वहन कर रही हैं।

29 मई, 1955 को गुजरात के एक उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मी नफीसा को सौभाग्यवश सहयोगी माता-पिता तथा भाई-बहन मिले। शिक्षित माता-पिता का बालिका नफीसा के विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। चार वर्ष की आयु में जब नफीसा ने स्कूल में प्रवेश लिया तो वे केवल आंशिक रूप से ही देख सकती थीं। उन्हें जन्म से ही रेटीनाइटिस पिगमेंटोसा नामक आँखों की बीमारी थी। वे श्याम-पट्ट पर लिखी सामग्री नहीं पढ़ पाती थी, जिसका प्रयोग स्कूलों में प्राय: किया जाता है। आरम्भ में सरलतापूर्वक पढ़ने-लिखने की क्षमता वाले दृष्टिवान बालकों के बीच स्वयं को पाकर नफीसा को असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। परन्तु न केवल वे प्रखर बुद्धि बालिका थीं अपितु परिश्रमशील भी थीं। शिक्षक, माता-पिता तथा सहेलियों के सहयोग के फलस्वरूप वे स्कूल परिवेश में सहज रूप से रुचि लेने लगीं। जैसे ही उन्होंने दृष्टिबाधाजन्य कठिनाइयों से उबरने के लिये प्रयास किए, उनकी बौद्धिक क्षमता अधिक प्रभावशाली बनने लगी।

उनकी रही-सही अवशिष्ट दृष्टि स्कूल शिक्षा के पश्चात और कम होने लगी। इस कठिनाई का साहसपूर्वक सामना करते हुए उन्होंने अपनी शिक्षा का क्रम जारी रखा तथा मुम्बई के प्रतिष्ठित सेंट जेवियर कॉलेज से अर्थशास्त्र मुख्य विषय लेकर

बी.ए. किया। कॉलेज से पर्याप्त सहयोग मिलने के बावजूद श्रुतलेखक की अनुमति प्राप्त करने के लिए उन्हें परीक्षा केन्द्र प्रमुखों को समझाने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ी। छात्रवृत्ति प्राप्त, नफीसा ने कॉलेज में द्वितीय स्थान प्राप्त किया तथा तर्कशास्त्र में विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये। वास्तव में उनकी तर्कशक्ति भविष्य में उनके व्यवसाय के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

वे एम. बी. ए. करना चाहती थीं परन्तु अनेक लोगों ने समझाया कि उनकी विकलांगता को ध्यान में रखते हुए टेलीफोन ऑपरेटिंग उनके लिए अधिक उपयुक्त व्यवसाय होगा। वे एन. ए. बी. से परिचित थीं और इस संगठन ने उन्हें सैन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया में टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में रोजगार प्राप्त करने में मदद की।

दिल की आवाज नफीसा से बार-बार कहती रही कि उनकी योग्यता व क्षमता टेलीफोन ऑपरेटिंग के लिये आवश्यक योग्यता से बहुत अधिक है। परिणामस्वरूप रोजगार मिलने के बावजूद वे असन्तुष्ट, बेचैन और अप्रसन्न थीं। अत: उन्होंने बैंकिग विषय में गहन अध्ययन का निर्णय लिया। उन्होंने इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स द्वारा आयोजित सी.ए.आई. आई. बी. की परीक्षा दी तथा सैन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा आयोजित पदोन्नति परीक्षा देने का भी निश्चय किया। बैंकिग तथा फाइनेन्स को चुनींदा दृष्टिवान व्यक्तियों का ही क्षेत्र माना जाता है। अत: इस क्षेत्र में सफल होने से पूर्व नफीसा को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम तो श्रुतलेखक की मदद से परीक्षा देने की अनुमति प्राप्त करना ही नफीसा के लिये टेढ़ी खीर साबित हुई। इसके अतिरिक्त प्रबन्धकों को सन्देह था कि वे पदोन्नति के लिए मुम्बई से बाहर दो वर्ष की आवश्यक सेवा के लिए तैयार होंगी अथवा नहीं। उन्हें इसमें भी सन्देह था कि वे सहायक प्रबन्धक के उत्तरदायित्व किस प्रकार वहन करेंगी। फिर भी नफीसा की मेहनत रंग लाई और उन्होंने परीक्षा दी।

प्रतिभा व आत्मविश्वास की जीत हुई और नफीसा ने 570 सफल उम्मीदवारों की सूची में 28वाँ स्थान प्राप्त किया। इस सफलता से प्रबन्धक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने नफीसा को सहायक प्रबन्धक के पद पर पदोन्नत कर दिया और साथ ही उन्हें मुम्बई में ही सेवा करने का अवसर भी प्रदान किया।

एक प्रतिष्ठित बैंक की कॉरपोरेट फाइनेन्स ब्राँच में नफीसा की नौकरी चुनौतीपूर्ण रही है। अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को सावधानी एवं सफलतापूर्वक वहन करने के परिणामस्वरूप उनके सहकर्मियों तथा उच्चाधिकारियों की समस्त आशंकाएं व नकारात्मक प्रतिक्रियाएं निश्चेष्ट हो गयीं। उन्हें अपने काम से बहुत आनन्द और सन्तुष्टि मिली। उनके उत्तरदायित्वों में निर्यातकों की ओर से विदेशी मुद्रा की खरीद तथा बिक्री एवं मुद्राओं के चलन के सम्बन्ध में ग्राहकों को परामर्श देना सम्मिलित हैं।



नफीसा का लक्ष्य सदा ऊँचा रहा है। केवल एक पदोन्नति उनकी प्रगति की भूख को शांत नहीं कर सकती थी। अत: एक और पदोन्नति के लिए उन्होंने 1998 में परीक्षा दी तथा प्रबन्धक बन गईं। आज वे न केवल जटिल वित्तीय मामलों को सम्भालती हैं अपितु अपनी अन्तर्राष्ट्रीय डिवीजन के साथ मिलकर ग्राहकों के लिए विदेशी मुद्रा व ऋणों की व्यवस्था भी करती हैं। इसके अतिरिक्त वे एक अन्य उत्तरदायित्व भी सम्भालती हैं जिसके अन्तर्गत उन्हें हर पखवाड़े अपने बैंक को आर रिटर्न्स भेजनी पड़ती हैं।

अपनी व्यस्तता के बावजूद वे विकलांगता के क्षेत्र को--विशेषकर दृष्टिबाधित महिलाओं से सम्बद्ध मामलों में अपनी सेवाएं देने के लिए समय निकाल ही लेती हैं। एन. ए. बी. कमेटी ऑन द एडवांसमेंट ऑफ द स्टेटस ऑफ ब्लाइण्ड वूमेन की अवैतनिक सचिव होने से दृष्टिबाधित महिलाओं के कल्याण में उनकी विशेष रुचि स्पष्ट हो जाती है। वे फोरम ऑन द स्टेटस ऑफ ब्लाइण्ड वूमैन की कोषाध्यक्ष तथा ब्लाइण्ड ग्रेजुएट फोरम ऑफ इण्डिया की अध्यक्ष भी रही हैं।

अपनी उपलब्धियों के लिए नफीसा को अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। उन्हें एन. ए. बी. की ओर से नीलम कांगा पुरस्कार तथा वर्ष 1999 में उत्कृष्ट विकलांग कर्मचारी का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। उन्हें जाइन्ट्स इण्टरनेशनल, बाइकुला तथा लायन्स क्लब की ओर से भी पुरस्कृत किया जा चुका है।

स्वभाव से खुशनुमा और दृढ़ व्यक्तित्व की धनी नफीसा को स्क्रीन-रीडर की मदद से इण्टरनेट पर सूचनाएं एकत्र करना पसन्द है। अपनी रुचि, हैम रेडियो के विषय में बात करते हुए उनका चेहरा खिल उठता है। वे मुम्बई की गैर व्यावसायिक हैम रेडियो सोसाइटी 'मार्स' की भी अध्यक्ष रह चुकी हैं।

उपयुक्त जीवन साथी पाकर श्रीमती नफीसा परवेज बोहारीवाला सुखद वैवाहिक जीवन बिता रही हैं। उनकी दो बेटियाँ हैं।

•

# परिमला विष्णु भट्ट
## एक बहुआयामी व्यक्तित्व

—मुक्ता अनेजा

व्यवसाय से समाजसेवी, उत्साही पर्वतारोही, आवाज संवर्धन की विशेषता तथा थियेटर में अत्यधिक रुचि रखने वाली परिमला विष्णु भट्ट अपने चयनित क्षेत्रों में श्रेष्ठ हैं।

परिमला वी. भट्ट का जन्म 21 अगस्त, 1958 को मुम्बई में हुआ। वे जन्मांध हैं। सौभाग्यवश उन्हें स्नेही, उत्साहवर्धन करने वाले तथा पर्याप्त ध्यान देने वाले माता-पिता मिले। उनके पिता प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'दि इंडियन एक्सप्रेस' के समाचार-सम्पादक थे, तथा उनकी माँ, नमा भट्ट विकलांगता कल्याण क्षेत्र की सुपरिचित महिला हैं। अपने प्रगतिशील माता-पिता तथा निकट सम्बन्धियों की छत्र-छाया में परिमला ने बाधाओं से सफलतापूर्वक संघर्ष करने एवं व्यक्तित्व विकास की बहुमूल्य शक्ति अर्जित की।

अपनी आयु के अधिकतर बालकों की भाँति उन्होंने भी अपनी शिक्षा किन्डर-गार्डन से प्रारम्भ की। दृष्टिबाधा के बावजूद उनके माता-पिता ने उन्हें एक नियमित विद्यालय में भेजने का निर्णय लिया। एकीकृत शिक्षा प्रणाली में अध्ययन के फलस्वरूप उन्हें अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। उन्हें अपने दृष्टिवान सहपाठियों के दोष तथा ब्रेल व रिकार्डेड पुस्तकों की अत्यधिक कमी से जूझना पड़ा। नियमित रूप से अच्छे वाचक तथा श्रुतलेखक ढूंढ़ पाना भी एक बड़ी चुनौती थी परन्तु वे अबाध गति से आगे बढ़ती रहीं तथा प्रशंसनीय सफलता के साथ उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा पूरी की।



उन्होंने उच्च शिक्षा के पक्ष में स्वाभाविक निर्णय लिया और एम.एस.डब्ल्यू. की उपाधि प्राप्त की परन्तु अनेक दृष्टिबाधितों की भाँति इस डिग्री के पश्चात भी उनकी कठिनाइयों के अन्त का समय अभी कुछ दूर था। उन्हें नौकरी के लिए अस्वीकृति के दौर से गुजरना पड़ा तथा अनेक प्रार्थना-पत्रों का तो जवाब तक भी नहीं आया। बड़ी मशक्कत, सहनशीलता और धैर्य के बाद उन्हें कमला मेहता, दृष्टिहीनार्थ स्कूल, मुम्बई में समाजसेविका का अस्थाई पद प्राप्त हुआ। यहाँ पर उन्हें तीन वर्ष तक सेवा करनी पड़ी।

कुछ लोगों की मान्यता है कि वास्तविक क्षमता तथा योग्यता को शीघ्र ही पहचान लिया जाता है। उनकी क्षमताओं को एन.ए.बी. के पूर्व अध्यक्ष तथा प्रसिद्ध परोपकारी स्वर्गीय विजय मर्चेन्ट का सम्बल प्राप्त हुआ और उन्हें 1984 में एयर इण्डिया में एक अच्छी नौकरी मिल गई। परिमला की एयर इण्डिया की मेडिकल शाखा में सोशियल सर्विस ऑफीसर के रूप में नियुक्ति हुई। वे अभी तक वहीं काम कर रही हैं। उनके उत्तरदायित्वों में सामान्य पारिवारिक मामलों तथा परिवार नियोजन के सम्बन्ध में परामर्श देना, कर्मचारियों की आवश्यकतानुसार अस्पताल में आरक्षण सुनिश्चित करना, अस्वस्थ व्यक्तियों से सम्पर्क रखना तथा डॉक्टरों से उनके सम्बन्ध में चर्चा करना सम्मिलित है।

इस खूबसूरत महिला का परिचय एक दृष्टिवान व्यक्ति से हुआ, जो बाद में विवाह-बंधन में परिणित हो गया। दुर्भाग्यवश यह सम्बन्ध असफल रहा और उन्होंने सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। उनकी दोनों बेटियां उनके साथ रहती हैं। सुश्री परिमला भट्ट ने अपने साहस और धर्य की विशिष्टता के फलस्वरूप इस असफलता को अपने वर्तमान अथवा भविष्य के जीवन को कुंठित करने में वंचित कर दिखाया है। उन्होंने सांवेगिक त्रास को भूलकर सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय रहना जारी रखा है तथा वे अपनी बेटियों के लिए बखूबी एक माँ की भूमिका निभा रही हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष 1981 के दौरान सुश्री भट्ट ने मलेशिया में आयोजित नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम में भारत का प्रतिनिधित्व किया। वह प्रशिक्षण कार्यक्रम दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की दृष्टिबाधित महिलाओं के लिए आयोजित किया गया था तथा सुश्री भट्ट ने भारतीय दृष्टिबाधित महिलाओं की स्थिति पर अपना पेपर प्रस्तुत किया।

तभी से वे विकलांगता के क्षेत्र में सक्रिय रही हैं। बी.पी.ए., मुम्बई की कार्यकारिणी परिषद की सदस्य के रूप में उन्होंने दृष्टिबाधित महिलाओं के लिए कैन्सर-निदान तथा यकृत-शोथ बी. के विरुद्ध टीकाकरण हेतु आयोजित शिविरों में बढ़-चढ़कर भाग लिया है। वे एन.ए.बी. इण्डिया की कार्यकारिणी एवं क्लाईन्टेल सर्विस कमेटी की भी सदस्य हैं। वे एन.ए.बी. कमेटी ऑन दि एडवांसमेन्ट ऑफ दि स्टेटस ऑफ ब्लाइण्ड वीमैन की संस्थापक सदस्य हैं तथा उन्होंने इसकी पत्रिका

'विश्वदर्शन' का लगभग पाँच वर्ष तक सम्पादन किया।

सुश्री परिमला भट्ट की विकलांगों की दुर्दशा को सुधारने में गहन एवं निष्ठापूर्ण रुचि ने उन्हें स्नेहांकित नामक हैल्प लाइन स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। इस हैल्प लाइन के माध्यम से दृष्टिबाधित महिलाएं तथा स्वयंसेवक पारस्परिक वार्तालाप के लिए एकत्रित होते हैं। उन्होंने युवाओं एवं छात्रों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इनके लिए परामर्श, कार्यशाला, चर्चा, आनन्द-भ्रमण, आवाज संवर्धन तथा स्टेज कार्यक्रम आयोजित करने के लिए भी सक्रिय योगदान दिया है। उनकी प्रेरणा से अनेक युवा आकाशवाणी तक पहुँचे तथा कुछ तो ऑडिशन टैस्ट में पास होने के बाद प्रसारण जगत में भी प्रवेश कर चुके हैं।

सुश्री भट्ट की रुचियाँ विविधतापूर्ण हैं। उन्होंने हिमालयन माउंटेनियरिंग इन्स्टीट्यूट, दार्जलिंग द्वारा दृष्टिबाधितों के लिए आयोजित पर्वतारोहण के एडवेन्चर्स कोर्स में भाग लिया था। 1994 में वे हिमालय की 17500 फुट ऊँची क्षितिधार चोटी पर पहुँचने में सफल रहीं तथा 14000 फुट ऊँचे दजोंगरी शिखर पर भी पहुँचने में सफल रहीं। उन्होंने राक-क्लाइम्बिंग का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया है। इन सब गतिविधियों से उनकी अतिरिक्त शक्ति एवं उत्साह का पता चलता है।

सुश्री भट्ट ने 1986 में एन.ए.बी. से नीलमकांगा एवार्ड प्राप्त किया। 1987 में ए.आई.सी.बी. द्वारा प्रदत्त एवार्ड उन्होंने तत्कालीन उपराष्ट्रपति के कर-कमलों से ग्रहण किया।

लोग आश्चर्य करते हैं कि उन्हें इतनी उर्जा कहाँ से प्राप्त होती है? चाहे नौकरी हो या समाजसेवा, अपने परिवार के प्रति स्नेह का प्रश्न हो, चाहे थियेटर में रुचि अथवा पर्वतारोहरण, परिमला जी उत्साहपूर्वक भाग लेती हैं तथा किसी भी प्रकार की बाधाओं को अपने ऊपर हावी नहीं होने देतीं। वे समाजसेवियों को उनकी प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के लिए अपनी सक्रिय भूमिका द्वारा प्रेरित करती हैं।

वे समाज को परामर्श देती हैं कि वे दृष्टिबाधितों को उनकी सम्पूर्णता में स्वीकार करे। वे चाहती हैं कि समाज दृष्टिबाधित व्यक्तियों के प्रति सहनशीलतापूर्ण व्यवहार करे।

•



# पी. आर. पिचुमनी

## उत्कृष्ट उद्योगपति

—मुक्ता अनेजा

सन् 1972 में एक कुशाग्र-बुद्धि युवा यान्त्रिकी अभियंता (Mechanical Engineer) ने 'लुकस- टी. वी. एस. लिमिटेड' नामक प्रसिद्ध कम्पनी में नौकरी आरंभ की। इस महत्वाकांक्षी युवक को उस समय दोहरे संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था। उसे न केवल अपने व्यवसाय में स्थापित होने की चिंता थी अपितु दृष्टि-अक्षमता के आरंभ के फलस्वरूप उससे समायोजन की कष्टदायक प्रक्रिया भी साथ-साथ चल रही थी। इस ऊर्जावान व्यक्ति का नाम था-- पी. आर. पिचुमनी।

पिचुमनी का जन्म 12 अगस्त 1947 को हुआ, उनकी विशिष्ट प्रतिभा बाल्यकाल में ही स्पष्ट होने लगी थी। उनकी प्रखरता विद्यालय के दिनों में और निखरने लगी। शीघ्र ही उन्हें ज्ञात हो गया कि उनकी रुचि अभियांत्रिकी (Engineering) में है। उनकी उज्जवल भविष्य की कल्पना की पृष्ठभूमि में वे दृष्टिबाधा के भय से भी ग्रस्त होने लगे थे, जिसका कारण खतरनाक रोग रेटिनाइटिस पिगमेन्टोसा(Retinitis Pigmentosa) था, फिर भी अपनी महत्वाकांक्षा, दृढ़ निश्चय तथा ऊर्जा के बल पर उन्होंने यंत्रीय अभियांत्रिकी में बी. ई. की परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। दुर्बल होती हुई दृष्टि से अनावश्यक रूप से भयभीत हुये बिना पिचुमनी ने स्नातक प्रशिक्षणार्थी के रूप में एक मशहूर कम्पनी में काम शुरू किया।

यहाँ पर उन्होंने योजना-निर्माण, कार्यक्रम-निर्धारण तथा उत्पादन-प्रक्रिया से सम्बद्ध महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किया। इस ज्ञान तथा अनुभव का उन्हें दीर्घकालीन लाभ मिला।

वर्ष 1977 वे में पूर्णत: दृष्टिहीन हो गये। यह एक भयानक आघात था। सौभाग्यवश उनका अदम्य साहस एवं धैर्य उनकी शक्ति के संबल थे। उन्होंने कम्पनी के समक्ष स्थायी रूप से उनके लिये कुछ कलपुर्जे तैयार करने का प्रस्ताव रखा। कहावत है कि लम्बी से लम्बी यात्रा 'पहले कदम' से ही आरंभ होती है। उन्होंने यह पहला कदम सन् 1977 में उठाया। उन्होंने 'मेफ्लावर इंजीनियरिंग इन्डस्ट्रीज' (Mayflower Engineering Industries) की उत्साहपूर्वक स्थापना की और वह 'पहला कदम' उन्हें आज बहुत आगे तक ले गया है। श्री पिचुमनी ने छोटे से शैड में तीन मशीनों और उतने ही मजदूरों के साथ ऑटोइलेक्ट्रिक कलपुर्जे बना कर 'लुकस टीवीएस' को बेचना आरंभ किया। सीमित साधनों से उद्यम आरंभ करना काफी मुश्किल था। अत: उन्होंने साहस, ज्ञान व धैर्य सरीखे आन्तरिक संसाधनों का प्रयोग व्यापार में सफलता के लिये किया। आरंभिक वर्ष चुनौतियों व बाधाओं से भरे थे। वे अपने हाथों से मशीन व उनके कलपूर्जे की कार्यविधि को समझते थे। उनके सामने एक समस्या अकुशल मजदूरों को उस स्तर तक लाने की भी थी, जहां वे गुणवत्तापूर्ण उत्पाद तैयार करने लगते। दृढ़ स्वभाव वाले पिचुमनी ने लगातार अपने तकनीकी ज्ञान में वृद्धि की और परिणामस्वरूप प्रक्रिया संबंधी अनेक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ लिया।

परिश्रम एवं सजगता के कारण उनकी कम्पनी गुणवत्तापूर्ण उत्पाद बनाती थी। फलत: शीघ्र ही उनकी साख तेजी से बढ़ने लगी। लुकस-प्रबंधन तथा कर्मचारियों की ओर से उन्हें भरपूर सहयोग मिल रहा था क्योंकि वे पिचुमनी के कलपुर्जों से संतुष्ट थे। श्री पिचुमनी ऑटोमोबाइल के स्टील से बने हिस्से तैयार करते हैं। गुणवत्ता नियंत्रण पर वे विशेष ध्यान देते हैं। निर्धारित समय पर माल पहुँचाना तथा अपने ग्राहकों के प्रति नम्रता उनकी सफलता के दो अन्य कारक हैं।

विश्वसनीयता, गुणवत्ता तथा व्यापारिक सूक्ष्मदृष्टि एक साथ मिल जाएं तो व्यापार में वृद्धि होगी ही। सीमित साधनों से कार्य आरंभ कर श्री पिचुमनी ने इसमें काफी विस्तार कर लिया है। धीरे-धीरे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम से ऋण लेकर बड़ा शैड लिया तथा अर्द्ध-स्वचालित मशीनें लगायीं। धैर्य तथा परिश्रम के बल पर उनका उत्पादन सन् 1990 में 60 लाख रुपये प्रतिवर्ष पहुँच गया, प्रारम्भ में 48 हजार रुपये प्रतिवर्ष की तुलना में यह कहीं अधिक था। मोटर-वाहन क्षेत्र में वृद्धि तथा अपने विकास से प्रोत्साहित होकर उन्होंने अपनी महत्वकांक्षा को विस्तार देने का निश्चय कर लिया। सन् 1995 में पिचुमनी ने वनग्राम गाँव नामक उपनगर में अपनी अगली औद्योगिक इकाई स्थापित कर डाली। यह स्थान हराभरा तथा प्रदूषणमुक्त आबोहवा के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ पर इस दृष्टिबाधित उद्यमी ने 9200 वर्गफुट स्थान में अपना औद्योगिक परिसर बनाकर एक और स्वप्न को साकार रूप दिया। इस उद्देश्य के लिये उन्हें पंजाब नेशनल बैंक से ऋण प्राप्त हुआ। अपने पारिवारिक सदस्यों से भी उन्हें इसके लिये सहयोग मिला।



दृष्टिक्षति से विचलित हुए बिना तथा असीम ऊर्जा के स्वामी श्री पिचुमनी ने भविष्य के सुनहरे सपने सदा जिंदा रखे हैं। उन्होंने तीन मजदूरों से शुरुआत की थी परन्तु आज उनके पास 40 कर्मचारी हैं। इतनी ही मशीनों के लिये उनके पास 80 हॉर्स पावर की स्थापित क्षमता है। वर्तमान में उत्पादन बढ़ कर 2 करोड़ 40 लाख रु. प्रतिवर्ष तक पहुँच गया है।

विलक्षण उपलब्धियों के लिये श्री पिचुमनी को राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान तथा दृष्टिहीनार्थ संस्था द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। व्यापार में उनके योगदान को न केवल भारत अपितु विदेशों में भी सराहा जा रहा है। पिछले तीन वर्षों से मेफ्लावर इंजीनियरिंग प्रा. लि. 'आई एस ओ' प्रमाणित कम्पनी है। जापान के डेमिंग अवार्ड से सम्मानित प्रोफेसर वासीयो ने अपने दौरे के बाद इस औद्योगिक इकाई की गुणवत्ता प्रणाली तथा रखरखाव की प्रशंसा की है। मेफ्लावर को 'सर्वोत्तम आपूर्तिकर्ता सम्मान' मिल चुका है। यहाँ से लुकस टी. वी. एस. तथा पांडीचेरी संभाग के साथ-साथ, जी.ई. पॉवर को भी कलपुर्जों की आपूर्ति की जाती है।

श्री पिचुमनी अपनी सहनशीलता, धैर्य, दृढ़ इच्छाशक्ति एवं काम के प्रति समर्पण के कारण ही इस मुकाम तक पहुँच पाये हैं। बाधाओं को अस्थायी मानते हुए, वे प्रत्येक अड़चन का प्रसन्नतापूर्वक सामना करते हैं और उसका समाधान ढूंढ़ निकालते हैं। वे दूसरों को यही विश्वास रखने का परामर्श देते हैं कि अंतत: सफलता अवश्य मिलती है।

•

# प्रणवलाल

## एक उदीयमान प्रबंधन व्यावसायिक

—राजेश कुमार

प्रणवलाल अभी मात्र 26 वर्ष के हैं परन्तु उनकी उपलब्धियाँ भारत के समस्त दृष्टिबाधितों के लिए सकारात्मक प्रेरक की क्षमता ग्रहण कर चुकी हैं। समय से पहले ही जन्म लेने के कुप्रभाव के कारण वे जन्मान्ध हैं। वे कहते हैं, ''क्षीण प्रकाश के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं देख सकता।''

प्रणव का जन्म 18 जनवरी, 1979 को कुवैत में हुआ तथा उन्होंने 1999 में दिल्ली विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। अत्यधिक दृश्य-प्रतिकृति के प्रयोग, रोजगार के अल्प अवसर तथा व्यावसायिक प्रगति के सीमित विकल्पों के कारण यह विषय दृष्टिबाधितों में बहुत कम लोकप्रिय है। इन सबके बावजूद भी उन्होंने व्यापार प्रबन्धन (Bussiness Administration) में विशेष रुचि ली तथा निगमित क्षेत्र (Corporate Sector) में प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया जहाँ व्यावसायिक श्रेष्ठता, प्रतिस्पर्धात्मक भावना तथा सकारात्मक व्यवहार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। प्रश्न उठता है कि यह सब कैसे सम्भव हुआ?

प्रणव का विचार है, ''मेरे माता-पिता की ओर से मुझे बहुत सहयोग मिला। उन्होंने मुझे ऐसा परिवेश प्रदान किया जिसमें मैं स्वतन्त्र विचार, महत्वपूर्ण तर्क-शक्ति तथा परिवर्तन से समायोजन जैसे बहुमूल्य गुणों को विकसित कर पाया।'' पारिवारिक सहयोग बचपन से ही उपलब्ध रहा, इसीलिए उन्हें अपने आसपास की दुनिया के बारे में सीखने तथा उसे समझने के लिए प्रोत्साहन मिला। ''सर्वाधिक कठिन चुनौती प्रकृति की ओर से थी। अत: मेरे माता-पिता मुझे चिड़ियाघर ले जाते

थे ताकि मैं पशु-पक्षियों की आवाजों से परिचित हो सकूं। उन्होंने पशुओं की आकृति समझाने के लिए रबड़ की अनुकृतियां उपलब्ध कराईं। उन्होंने नर्सरियों में मुझे पौधे स्पर्श कर देखने के लिए भी प्रोत्साहित किया।''

इतने सहयोग के बावजूद भी प्रणव को आरम्भिक वर्षों में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा । उन दिनों सीमित उत्पादन सुविधाओं के कारण, ब्रेल अथवा ध्वन्यांकित पुस्तकों की व्यवस्था करना बहुत कठिन था। ''पाठ्य-पुस्तकें प्राप्त करना प्राथमिक समस्या थी। श्रुत-लेखक पर निर्भरता के कारण परीक्षा सम्बन्धी कठिनाइयां भी थीं।''

बड़े होने पर प्रणव ने गहन अध्ययन के लिए जी-तोड़ मेहनत की। ''अनेक बार मुझे अपनी ही प्रणाली विकसित करनी पड़ी। उदाहरण के लिए, विज्ञान में भौतिक तथा रसायनशास्त्र के लिए मुझे घर में ही लगभग पूरी प्रयोगशाला बनानी पड़ी। साथ ही मैंने माता-पिता की सहायता से मुख्यधारा की बहुत सी प्रौद्योगिकी को अपने लिए संशोधित किया, विशेषकर ज्यामिति में। उदाहरणार्थ सीधी रेखाएं खींचने के लिए मैं चुम्बकीय पैमाने का प्रयोग करता था। कागज को धातु की प्लेट तथा चुम्बकीय पैमाने के बीच में फंसा देता था। इस प्रकार चुम्बक कागज को यथा-स्थान रखता था।''

''आरम्भ में ब्रेल का इस्तेमाल करता था, तत्पश्चात कैसेट रिकार्डर तथा कम्प्यूटर का प्रयोग करने लगा। पाठ्य-पुस्तकों को मैंने सी. डी. पर तैयार करवाया परन्तु गणित की पुस्तकों के लिए यह उपाय सन्तोषजनक नहीं था। अत: मुझे वाचकों के साथ-साथ शिक्षकों से भी अतिरिक्त सहायता लेनी पड़ती थी।''

नवीं कक्षा तक वे उपयुक्त प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर भी विशेष ध्यान देने लगे, ''जब मैंने कम्प्यूटर सीखना आरम्भ किया तब बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध थी। अत: प्रौद्योगिकी-अनुकूलन की समस्याओं को सुलझाने के लिए मुझे प्रयास व त्रुटि का सिद्धान्त अपनाना पड़ा। ''

बिजनेस स्कूल में श्रुत-लेखकों पर निर्भरता की समस्या का समाधान भी हो गया क्योंकि वहाँ परीक्षाओं में लेपटॉप के प्रयोग की अनुमति मिल गई, ''साथ ही बहुत सी शिक्षण सामग्री इलैक्ट्रानिक प्रणाली में भी उपलब्ध थी।''

प्रणवलाल निश्चित रूप से उर्जस्वी तथा स्व-प्रेरित युवक हैं। सम्भवत: अनेक देशों में प्रणव की यात्रा तथा बचपन के नौ वर्ष तक ओमान में उनका प्रवास, आंशिक रूप से उनके आत्मविश्वास के लिए उत्तरदायी कारक हैं। उन्होंने अपने माता-पिता के साथ जाकर डिजिटल एक्सेसीबल इन्फॉरमेशन सिस्टम (DAISY) कार्यशालाओं तथा व्यावसायिक कौशल की प्रतियोगिता--एबिलिम्पिक्स सरीखी अनेक गतिविधियों में भाग लिया। वे स्विट्जरलैण्ड, चैक गणराज्य, थाइलैंड तथा संयुक्त अरब

अमीरात की यात्रा कर चुके हैं। वे हिन्दी, अंग्रेजी तथा जर्मन भाषाओं में वार्तालाप कर सकते हैं।

प्रणव ने सदैव कक्षेतर गतिविधियों में भी भाग लिया। उनका कहना है, ''मैंने स्कूल तथा कॉलेज स्तर पर अनेक वादविवाद, भाषण एवं सामूहिक चर्चाओं में भाग लिया तथा पुरस्कार प्राप्त किए।'' उन्होंने सन् 2000 में प्राग, चैक गणराज्य में आयोजित पाँचवे अन्तर्राष्ट्रीय एबिलिम्पिक्स में कम्प्यूटर कार्यक्रम निर्माण हेतु विशिष्ट श्रेष्ठता पुरस्कार प्राप्त किया। सन् 2001 में नई दिल्ली में आयोजित छठे क्षेत्रीय एबिलिम्पिक्स में प्रणव ने कम्प्यूटर कार्यक्रम निर्माण के लिए स्वर्ण पदक के साथ-साथ असाधारण प्रदर्शन के लिए पुरस्कार भी प्राप्त किया।

सन् 2002 में अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्धन संस्थान से एम. बी. ए. करने के पश्चात उन्होंने तुरन्त नौकरी ढूँढ़ना आरम्भ कर दिया। साक्षात्कार के बाद उन्हें कैरियर लांचर कम्पनी में ई. आर. पी. तथा मानव संसाधन सूचना प्रणाली के प्रबन्धन में नौकरी मिली। उनके अनुसार दृष्टिबाधा के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के उन्होंने निगमित जगत (Corporate World) में प्रवेश किया, ''मैं बी. स्कूल में था तथा अन्य किसी भी दृष्टिवान व्यक्ति की भाँति ही मैंने स्थानन (Placement) प्रक्रिया पूरी की।''

अपने काम में उन्होंने आनुकूलिक प्रौद्योगिकी (Adaptive Technology) का भरपूर इस्तेमाल किया। उनके अनुसार, ''मैं मुख्यधारा प्रौद्योगिकी का यथासम्भव अधिकतम प्रयोग करके अपना सारा काम कम्प्यूटर पर करता था। मेरा एक उत्तरदायित्व शिक्षण भी था। श्वेत-पट्ट प्रयोग न कर पाने के कारण मैं लैपटॉप के साथ प्रोजेक्टर का प्रयोग करता था।''

उन्हें कार्यालय में कभी भी अटपटा नहीं लगा, ''मैंने दृष्टिहीनता का सहारा नहीं लिया। मेरे सीखने की गति तीव्र थी, मैं बहुत अधिक पढ़ता था तथा प्रौद्योगिकी अनुकूलन का काम भी स्वयं करता था।'' अपने सहयोगियों की प्रशंसा करते हुए प्रणव कहते हैं ''वे बहुत समझदार लोग थे तथा दृष्टिबाधा के साथ-साथ मेरी क्षमताओं को भी समझते थे।'' पर यह भी उतना ही सच है कि उन्होंने अपने सहकर्मियों की आशाओं पर खरा उतरने के लिए विशेष प्रयास किए। ''मैं सुनिश्चित करता था कि मेरे द्वारा प्रतिपादित कार्य उनकी समझ में तुरन्त आ जाए।''

आजकल दृष्टिबाधित लोग मनोरंजन, सम्प्रेषण, बौद्धिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में कृत्रिम ध्वनि प्रौद्योगिकी पर निर्भर करते हैं। अपनी पहली नौकरी के दौरान वे उन अग्रणी दृष्टि विकलांगों में से एक थे, जिन्होंने दृष्टिबाधितों के उपयोग की प्रौद्योगिकी के प्रचार हेतु प्रशंसनीय कार्य किया, ''अपोलो कृत्रिम ध्वनि (Apollo Synthesizer) उपकरण का मैंने ही यहाँ सर्वप्रथम इस्तेमाल किया तथा 'विंडो स्क्रीन' को



दृष्टिबाधितार्थ उपयोगी बनाने वाली प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी मैंने काफी पहले आरम्भ कर दिया था। व्यावसायिक दृष्टि से मैंने उपयोगी प्रारूप को लागू किया है तथा विश्व स्तर पर व्यापक सूचना प्रौद्योगिकी प्रणालियों को स्थापित किया है।''

अन्ततः उन्होंने परिवर्तन का निश्चय किया। ''मैं परामर्श-क्षेत्र में जाना चाहता था। मैं ऐसे क्षेत्र की खोज में था जहाँ मेरे व्यक्तिगत कौशल एवं प्रौद्योगिकी दोनों का उपयोग हो सके। साथ ही मेरी रुचि साइबर अपराध में उत्पन्न हुई। फलतः सूचना सुरक्षा परामर्श मेरे कार्यक्रम हेतु उपयुक्त था।'' अतः उन्होंने 'महिन्द्रा कम्पनी' में विशेष सेवा समूह के अन्तर्गत सहायक परामर्शदाता के रूप में कार्य आरम्भ कर दिया। अपने व्यावसायिक क्षेत्र के अतिरिक्त प्रणवलाल एन. ए. बी. दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य तथा दृष्टिहीनार्थ स्वयंसेवकों की प्रबन्धन समिति के सदस्य भी हैं। वे 'सकारात्मक योगदान' के इच्छुक हैं। उनका कहना है, ''मेरा अधिकतर काम संगठन द्वारा बनाये गये विभिन्न प्रस्तावों का मूल्यांकन होता है और मैं प्रौद्योगिकी सम्बन्धी कुछ सुझाव भी देता हूँ। समय की दृष्टि से मैं लचीलापन अपनाता हूँ और अधिकतर सम्प्रेषण ई-मेल के माध्यम से हो जाता है। मैं अपनी भूमिका पसन्द करता हूँ।''

व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद प्रणवलाल आराम के लिए समय निकाल ही लेते हैं। समय मिलने पर वे परिवार तथा मित्रों से मिलना-जुलना पसन्द करते हैं। वे कहते हैं, ''मैं होली और दीवाली में सक्रिय भाग लेता हूँ।''

अध्यवसाय, परिश्रमशीलता तथा आशावाद किसी भी विकलांगता, समस्या अथवा कठिनाई के समाधान में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रणवलाल इसका सटीक उदाहरण हैं। उनका कथन है, '' मेरी सफलता का श्रेय शोध, विश्लेषण तथा श्रेष्ठता को जाता है।''

वे लोगों को नये अनुभवों के प्रति सकारात्मक रुख अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं तथा सीखने के किसी भी अवसर का स्वागत करने की सलाह देते हैं। वे बिना लाग-लपेट के लोगों से अनुरोध करते हैं, ''सतत रूप से विकास करते रहिए।''

•

# बी. एस. वेंकटेस
## एक कर्मवीर

—मुक्ता अनेजा

विकट बाधाओं को मार्ग से हटने के लिए बाध्य करते हुए डॉ. बी. एस. वेंकटेस ने जीवन में प्रशंसनीय प्रगति से सिद्ध कर दिया है कि यदि दृष्टिहीन व्यक्तियों को अवसर दिए जाएं तो वे उच्चतम स्तरों पर उन विषयों का भी शिक्षण सफलतापूर्वक करने में सक्षम हैं जिन्हें प्राय: उनकी पहुँच से बाहर समझा जाता है। वेंकटेस कतिपय उन दृष्टिहीनों में से हैं जो अर्थशास्त्र के श्रेष्ठ शिक्षक हैं।

उनका जन्म बंगलोर के एक मध्यमवर्गीय परिवार में, जुलाई 1964 को हुआ। उन्हें पाँचवीं कक्षा में दृष्टिहीन हो जाने के कारण अचानक स्कूल छोड़ना पड़ा। कष्ट, आघात तथा असमंजस की स्थिति के कारण वे अपनी शिक्षा जारी न रख सके। सामान्य आयु में शिक्षा आरम्भ करने वाले बालक के तरकस में दृष्टिपटल विच्छेद जन्य आकस्मिक दृष्टिबाधा के कारण शिक्षा प्रक्रिया को अबाध रूप से जारी रखने के लिए आवश्यक भौतिक बाण नहीं थे। प्रारम्भिक निष्क्रियता, विवशता तथा अविश्वास से उबरकर वेंकटेस के पिता ने उन्हें पुन: शिक्षा आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया। और वेंकटेस ने गैर-स्कूली छात्र के रूप में प्रथम श्रेणी प्राप्त करते हुए सातवीं कक्षा उत्तीर्ण की। इस सफलता के साथ-साथ उनके पिता एवं पितामह के प्रोत्साहन ने उन्हें आठवीं कक्षा से संस्थागत विद्यार्थी के रूप में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरणा दी। उसके बाद तो वेंकटेस ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। बी. ए. तक लगभग प्रतिवर्ष उन्हें सर्वोत्तम छात्र का पुरस्कार मिलता रहा। यह सब उन्होंने आने-जाने की कठिनाइयों तथा वाचन-सहायता की सीमित उपलब्धता के बावजूद किया। श्रवण-



सामग्री इस्तेमाल करना अधिक खर्चीला था तथा एकीकृत शिक्षा व्यवस्था में ब्रेल सामग्री उपलब्ध नहीं थी। उच्चतर कक्षाओं में दृश्य-ग्राफिक, डायग्राम एवं समीकरण की समस्याएं अधिक जटिल होती गईं। कुछ शिक्षकों का इन समस्याओं के समाधान में असहयोगपूर्ण व्यवहार इस संवेदनशील विद्यार्थी के लिए व्यथित करने वाला था।

लेकिन इन सब कठिनाइयों के बावजूद वेंकटेस ने आगे बढ़ने का दृढ़ निश्चय किया हुआ था। उन्होंने आने-जाने तथा वाचन के लिए व्यक्तिगत सहायकों की सहायता लेना आरम्भ किया और कुछ मित्रों ने भी उन्हें इसमें सहायता दी। उन्होंने परिश्रमपूर्वक ब्रेल में संक्षिप्त पाठ्य-सामग्री तैयार करना आरम्भ किया, विशेषकर ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में जो ग्राफिक्स पर आधारित नहीं थे। पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों में भाग लेने के फलस्वरूप उनकी बौद्धिक कुशाग्रता में भी वृद्धि हुई तथा उन्होंने पुरस्कार भी पाए। बी.ए. में प्रशंसनीय सफलता के परिणामस्वरूप वेंकटेस को स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए राष्ट्रीय योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। उन्होंने बैंकिंग क्षेत्र पर विशेष ध्यान केन्द्रित करते हुए अर्थशास्त्र में एम. ए. किया।

दृष्टिहीनों के प्रति पूर्वाग्रह सामान्य बात है। उपयुक्त नौकरी प्राप्त करने के लिए वेंकटेस दीर्घकालीन संघर्ष के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। उनके अनेक प्रार्थनापत्र निरर्थक सिद्ध हुए। केन्द्रीय विद्यालयों में दृष्टिबाधितों के लिए आरक्षण के बावजूद, उनके प्रार्थनापत्रों पर ध्यान नहीं दिया गया। यदि कभी साक्षात्कार के लिए बुलाया भी गया तो योग्यताओं के बावजूद विकलांगता के आधार पर उनका चयन नहीं किया गया। उनकी यही सोच थी कि दृष्टिबाधित व्यक्ति कक्षा-कक्ष स्थिति नहीं सम्भाल सकता। किसी के लिए भी आठ वर्षों तक नौकरी के बिना रहना हतोत्साहित करने वाला कारक हो सकता है परन्तु वेंकटेस अपने साहस तथा दृढ़ निश्चय के सहारे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। इसी बीच विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने नये निर्देशों के अन्तर्गत प्रवक्ता बनने के इच्छुक उम्मीदवारों के लिए योग्यता परीक्षा अनिवार्य बना दी। वेंकटेस कर्नाटक में राज्य-स्तरीय परीक्षा उत्तीर्ण किए हुए लोगों में सम्मिलित थे। इस प्रकार उनका चयन अपरिहार्य हो गया और कर्नाटक सरकार ने उन्हें एक महाविद्यालय में नियुक्ति प्रदान कर दी।

वे कर्नाटक सरकार के महाविद्यालय के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत सन् 1996 से कार्यरत हैं। अब वरिष्ठ प्रवक्ता के रूप में वे स्नातक तथा स्नातकोत्तर दोनों स्तरों पर शिक्षण कार्य करते हैं। उनका हजारों दृष्टिवान छात्रों को शिक्षा देने का दीर्घकालीन स्वप्न साकार हो गया है। नौकरी के आरम्भिक दिनों के सुखद अनुभव याद करते हुए वे कहते हैं, ''सहकर्मी तथा वरिष्ठ अधिकारी बहुत सहयोग करते थे। छात्रों के साथ भी मेरा आरम्भिक अनुभव अविस्मरणीय है। उन्होंने बहुत ही स्नेह तथा सम्मानपूर्वक शिक्षक के रूप में मुझे स्वीकारा।''

वर्ष 2002 में उनका एक अन्य चिरसंचित स्वप्न भी उस समय साकार हुआ जब बंगलोर विश्वविद्यालय से उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। उनका शोध विषय था--'पिछड़े क्षेत्रों के विकास की समस्याएं एवं संभावनाएं--कर्नाटक राज्य का अध्ययन।' इस शोध-प्रबन्ध के अन्तर्गत राज्य की आर्थिक स्थिति के नौ महत्वपूर्ण कारकों पर विचार किया गया है।

आज वेंकटेस दृष्टिबाधित शोधार्थी के समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना करते हुए बहुत आगे निकल आए हैं। अब वे स्वयं विश्वविद्यालय में एम. फिल. तथा पीएच.डी. करने वाले शोधकर्ताओं का मार्गदर्शन करते हैं।

डॉ. वेंकटेस ने अनेक गोष्ठियों तथा सम्मेलनों में सक्रिय भाग लिया है तथा अपने क्षेत्र से सम्बद्ध विषयों पर सूझबूझ भरे पत्र प्रस्तुत किए हैं, जिससे उनकी बौद्धिक सक्रियता एवं व्यस्तता का पता चलता है। उनके द्वारा प्रस्तुत कुछ पत्र इस प्रकार हैं: - 'कर्नाटक राज्य में सड़क विकास में विभिन्न जिलों में अन्तर', विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आयोजित गोष्ठी, दिसम्बर 2000 तथा जुलाई, 2001 में बंगलोर में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत 'कर्नाटक में कृषि विकास -- विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण'।

डॉ. वेंकटेस को वांछित जीवनसाथी भी मिला, जिसने सी. ए. की परीक्षा पास की हुई है। इनके दो बच्चे हैं--आठ वर्षीय बेटी तथा दो वर्षीय बेटा। डॉ. वेंकटेस अपनी पत्नी के प्रोत्साहन से पारिवारिक तथा स्थानीय सामुदायिक समारोहों में भाग लेते रहते हैं। सामाजिक योगदान के लिए डॉ. वी. एस. वेंकटेस को अनेक महत्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। सन् 2003 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा 'श्रेष्ठ विकलांग कर्मचारी' का पुरस्कार प्रदान किया गया तथा रोटरी क्लब बंगलोर द्वारा 'व्यावसायिक श्रेष्ठता सम्मान' प्रदान किया गया। उन्हें कर्नाटक सरकार तथा बंगलोर स्थित सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन संस्थान द्वारा भी सम्मानित किया जा चुका है।

डॉ. वेंकटेस ने एक बार पुन: साबित कर दिखाया है कि दृष्टिहीनता किसी विषय के शिक्षण में बाधक नहीं है। अत: समाज के लिए डॉ. वेंकटेस का सन्देश है, ''समाज को विकलांग व्यक्तियों की विशिष्ट योग्यताओं तथा निपुणताओं को पहचानना चाहिए तथा उनकी उपलब्धियों का सम्मान करना चाहिए। समाज को विकलांग लोगों को उनके लिए उपलब्ध कानूनी प्रावधानों का उपयोग भी करने देना चाहिए तथा उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए।''



# बूसेगौड़ा

## यशस्वी नर्तक

—अंजलि सेनगुप्ता

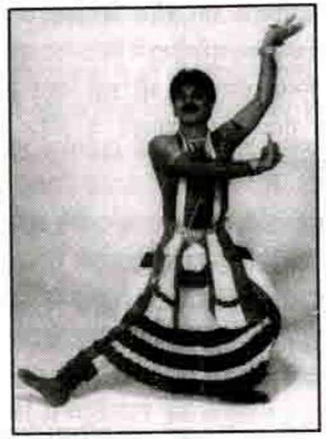

बूसेगौड़ा ने तमाम पूर्वाग्रहों तथा उपेक्षा के बावजूद बड़ा नाम कमाया है। उन्होंने स्वरोजगार के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। निरन्तर प्रशिक्षण तथा अभ्यास से गौड़ा ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि उपयुक्त अवसर मिलने पर दृष्टिहीन व्यक्ति पूर्णतया दृश्य-कला--नृत्य में भी महारत हासिल कर सकता है।

बूसे का जन्म कर्नाटक राज्य के जिला मांडया के अन्तर्गत टी. चेन्नापुरा नामक गाँव में हुआ था। यद्यपि उनके दो भाई जन्म से दृष्टिबाधित थे परन्तु उनकी दृष्टि सामान्य थी। दुर्भाग्यवश 1979 में एक दुर्घटना के फलस्वरूप उनकी दृष्टि क्षतिग्रस्त हो गई।

पहली कक्षा में अध्ययन के दौरान बूसे अपने परिवार के साथ गाँव का मेला देखने गए। भीड़ भरे मेले की रेल-पेल में वे गिर पड़े। गिरने के कारण रेतीला पानी उनकी आँखों में चला गया जिससे खुजली व जलन पैदा हो गई।

छह महीने बाद गौड़ा को देखने में कठिनाई होने लगी, तब जाकर किसी का ध्यान इस दुर्घटना की ओर गया। जिस चिकित्सक के पास उनके माता-पिता परामर्श के लिए गए उसके अनुसार बाल्यावस्था के कारण दो वर्ष तक शल्य-चिकित्सा सम्भव नहीं हो सकती थी। गाँव में किसी ने पत्तियों के रस से बनी स्थानीय दवाई बूसे की आँखों में डाली, जिसके परिणामस्वरूप एक वर्ष बाद गौड़ा की दृष्टि जाती रही। उनके माता-पिता ने पुन: डॉक्टर को दिखाया, जिसने बताया कि अब बहुत

देर हो चुकी है और अब बूसेगौड़ा को दृष्टिहीन के रूप में ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।

माता-पिता की अशिक्षा तथा आवश्यक परामर्श के अभाव में गौड़ा का एक वर्ष बेकार हो गया। सन् 1981 में अपने चाचाजी के सहयोग से उन्हें बंगलोर के निकट डी.एल.टी.बी. दृष्टिहीनार्थ आवासीय विद्यालय में प्रवेश मिल गया। अपने अध्ययन में श्रेष्ठ रहने के साथ-साथ बूसेगौड़ा ने विद्यालय की पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया और इनमें भी उन्हें बहुत सराहा गया। वर्ष 1984 में उन्हें विमानपुरा के एक प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश दिलवा दिया गया जहाँ एकीकृत शिक्षा योजना चलाई जा रही थी।

वर्ष 1986 में डी.एल.टी.बी. छात्रावास बन्द होने पर बूसेगौड़ा ने बंगलोर के एक अन्य विद्यालय, श्री रमन महर्षि दृष्टिहीनार्थ अकादमी के आवासीय अन्ध विद्यालय में शिक्षा जारी की। इस समय तक उन्हें क्रिकेट में महारत के कारण टीम का उपकप्तान बना दिया गया था। शतरंज व खेलकूद में भी उनकी सफलता प्रशंसनीय थी। सोने पर सुहागा यह कि 1991 में उन्होंने दसवीं कक्षा विशेष योग्यता (Distinction) के साथ उत्तीर्ण की।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण बूसे का परिवार उनकी उच्च शिक्षा का व्यय वहन करने में असमर्थ था। वास्तव में उनका परिवार आरम्भ में उनकी शिक्षा को लेकर सशंकित था, परन्तु आगे चलकर उन्हें परिवार का पूर्ण नैतिक समर्थन मिलने लगा।

बूसेगौड़ा ने एक डब्बा-उत्पादन इकाई में स्वागतकर्ता (Receptionist) के रूप में नौकरी शुरू की। बाद में उन्हें पदोन्नति देकर क्रय-विक्रय विभाग में भेज दिया गया। नौकरी के सहारे अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करने के साथ-साथ उन्होंने पत्राचार के माध्यम से मैसूर विश्वविद्यालय से 1997 में बी. ए. भी कर लिया। आज भी वे कृतज्ञतापूर्वक उन अनेक वाचकों की सहायता को स्मरण करते हैं जिन्होंने उनके लिए दृश्य-सामग्री को कैसेटों पर रिकार्ड किया।

बूसे ने 1986 से शास्त्रीय नृत्य भरतनाट्यम सीखना आरम्भ किया। अपने गुरु श्री अशोक कुमार के विषय में उनका कहना है-"दृष्टिहीन विद्यार्थियों को नृत्य सिखाने के लिए मेरे गुरूजी ने अनोखी-स्पर्श एवं अनुभव विधि का प्रयोग किया। मैंने उनके धैर्यपूर्ण, अबाध तथा कठोर प्रयासों के फलस्वरूप एकल प्रस्तुतियाँ आरम्भ कीं।" दर्शकों से मिली प्रशंसा तथा अपने गुरूजी के स्नेह के फलस्वरूप बूसेगौड़ा ने नृत्य को व्यवसाय बनाने का निश्चय किया। "अपनी श्रेणी के दृष्टिबाधितों में इस लक्ष्य तक पहुँचने वाला मैं प्रथम व्यक्ति हूँ। मैं देश के विभिन्न भागों एवं विदेशों में नृत्य प्रस्तुत कर चुका हूँ।" गौड़ा नृत्य से असीम प्रसन्नता अनुभव करते हैं। उन्होंने भारत, आस्ट्रेलिया, मलेशिया, हांगकांग, ब्रिटेन, श्रीलंका, दुबई, सिंगापुर,



संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में एक हजार से अधिक नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं। वे अनेक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं, जिनमें से प्रमुख हैं- नासेओ (NASEOH) द्वारा मयूर पुरस्कार, भारत सरकार द्वारा सृजनात्मक कला क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धि हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार 2000, एबिलिटी फाउंडेशन द्वारा कविन केअर उत्कृष्ट योग्यता पुरस्कार 2003 तथा कलाप्रेमी कला अकादमी, ब्रिटेन द्वारा प्रदत्त नाट्यकला कौशल पुरस्कार।

चयन के बावजूद केनरा बैंक ने श्री गौड़ा को नौकरी नहीं दी क्योंकि "प्रतिष्ठान को प्रतीत हुआ कि मेरी सांस्कृतिक गतिविधियाँ मेरे सेवा कार्य में बाधा उत्पन्न करेंगी।" यह अस्वीकृति बूसेगौड़ा के लिए जीवन का महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई जिसने उन्हें व्यापार में अपनी किस्मत आजमाने के लिए प्रेरित किया। आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखने वाले श्री गौड़ा कला के साथ-साथ वाणिज्य क्षेत्र में भी उत्कृष्ट व्यक्ति बनने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे। उन्होंने नृत्य कार्यक्रमों से अर्जित अपनी बचत से वर्ष 1997 में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सुविधा सम्पन्न टेलीफोन बूथ (PCO) स्थापित किया। अतिरिक्त आय के लिए श्री गौड़ा ने ट्रेवल एजेन्सी भी आरम्भ की जिससे उन्हें सात लाख रुपए की आय हुई। वे अंग्रेजी, हिन्दी, कन्नड़ तथा तमिल में वार्तालाप कर सकते हैं।

"अपने शुभचिन्तकों के सहयोग से दृष्टिबाधित होते हुए भी मैंने आशातीत सफलता प्राप्त की है। लोगों से अपने विषय में यह सुनकर प्रसन्नता का अनुभव होता है कि मैं अन्य युवाओं के लिए आदर्श व्यक्ति हूँ", श्री गौड़ा कहते हैं। समय मिलने पर वे सामाजिक तथा पारिवारिक समारोहों में भी सम्मिलित होते हैं। उनकी दृष्टिवान पत्नी कुशल गृहिणी हैं तथा उनका डेढ़ वर्ष का एक सुन्दर एवं स्वस्थ बेटा है।

श्री गौड़ा का कहना है - "समस्त बाधाओं से संघर्ष तथा जीवन में कुछ कर दिखाने की प्रबल इच्छा मेरी सफलता के प्रेरक कारक हैं।" आंतरिक शक्ति के अतिरिक्त व्यक्ति को समाज से भी सहयोग मिलना अनिवार्य है, "परिश्रमी, संघर्षरत तथा उदीयमान प्रतिभाओं के सहयोग हेतु समाज को शीघ्रता से आगे आना चाहिए।"

# माधुरी एम. देसाई
## एक असाधारण ज्योतिषी

—मुक्ता अनेजा

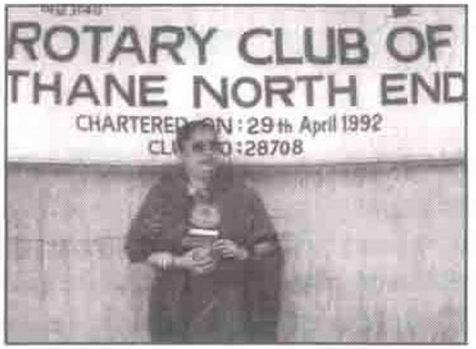


विकलांगों की क्षमताओं के संबंध में शंकालु समाज से घिरे होने पर भी माधुरी देसाई ने आत्मनिर्भरता के महत्व को स्पष्ट कर दिखाया है। बैंक में स्थाई नौकरी के फलस्वरूप वे सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर रही हैं। ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में वे कई उपाधियों से लोकप्रिय हैं जैसे ज्योतिषाचार्य, ज्योतिषविशारद आदि।

माधुरी का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में 18 मई 1956 को सूरत, गुजरात में हुआ। वे जन्मांध हैं। उनके माता-पिता उन्हें एक दृष्टिहीनार्थ स्कूल में ले गए। स्कूल की दुर्दशा देखकर उनका मन अपनी छोटी बच्ची को वहाँ छोड़ने के लिए नहीं माना, बाद में उपयुक्त परामर्श के फलस्वरूप उन्होंने माधुरी को एकीकृत शिक्षा वाले विद्यालय में प्रवेश दिलवा दिया। उनका विद्यालय बांद्रा, मुम्बई में था। वे प्राय: दृष्टिवान बालकों के साथ पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों में समान रूप से भाग न ले पाने के कारण उदास व खिन्न रहती थीं। वे सामान्य समाज का अभिन्न अंग बनने को उत्सुक थीं।

एकीकृत शिक्षा योजना में अकेले दृष्टिबाधित छात्र के सामने आने वाली समस्याओं से माधुरी को भी बहुत जूझना पड़ा। सामान्यत: शिक्षक आशा करते हैं कि श्यामपट्ट पर लिखी सामग्री को विद्यार्थी लिख लें और उन्हें बोलने की आवश्यकता न पड़े। माधुरी के लिए यह संभव नहीं था। अत: कुछ सहपाठियों की सहायता से इसका हल निकल पाया। वे श्यामपट्ट पर लिखी शिक्षण सामग्री को पढ़कर बताने



लगे। विशिष्ट शिक्षक ने ब्रेल भी सिखा दी।

संवेदनशील होने के कारण उन्हें कोई भी बात जल्दी चुभ जाती थी। उन्हें प्राय: अपने सहपाठियों तथा भाई-बहनों की सहायता लेनी पड़ती थी, यह उनके लिए पीड़ादायक अनुभव था। परन्तु इसका सकारात्मक परिणाम यह निकला कि माधुरी ने आत्म-निर्भर बनने का भरसक प्रयास किया।

माधुरी व उनके माता-पिता के सामने उपयुक्त वाचक तथा श्रुत लेखक (विशेषकर परीक्षाओं के दौरान) ढूंढ़ना एक बड़ी चुनौती थी। इस प्रकार की एक घटना उन्हें आज तक याद है। विद्यालय में अर्द्धवार्षिक परीक्षा थी। एक प्रश्न-पत्र दो भागों में दिया गया था परन्तु श्रुत लेखक केवल एक ही भाग लाया। बार-बार कहने पर भी वह दूसरे भाग के लिए पूछने नहीं गया। परीक्षा-भवन से बाहर निकलने पर माधुरी की आशंका सही साबित हुई और उन्हें 40 अंक की क्षति भुगतनी पड़ी। इसकी टीस भयानक थी। अन्तत: माता-पिता ने अपनी छोटी बेटी को भी उसी स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया जो माधुरी के लिए सहयोग का एक विश्वसनीय स्रोत सिद्ध हुई।

कॉलेज एवं विश्वविद्यालय में समस्याएं भिन्न प्रकार की थीं जिनका समाधान माधुरी ने परिश्रम तथा सहनशीलता के माध्यम से ढूंढ़ा। विद्यालय की अपेक्षा अब वे अध्ययन के लिए अधिक समर्थ थीं, क्योंकि स्वयंसेवी वाचकों के साथ-साथ टॉकिंग बुक तथा ब्रेल सामग्री का भी प्रयोग कर सकती थीं। लेकिन कठिनाइयों का सामना फिर भी करना पड़ा। उन्हें बांद्रा से कॉलेज के लिए चर्च गेट तक बस अथवा ट्रेन द्वारा अकेले सफर करना पड़ता था। इस प्रक्रिया में वे कभी खुले गड्ढे में गिरीं, कभी रास्ते के स्थिर अवरोधों से टकराईं तथा कभी रेहड़ी वाले ने टक्कर मारी पर हर बार उन्होंने साहसपूर्वक चुनौतियों का सामना किया और हार मानने से इंकार कर दिया। दृढ़ इच्छा शक्ति से अपनी शिक्षा पूरी करने और फिर नौकरी मिल जाने के कारण उन्हें आगे बढ़ते रहने का हौसला प्राप्त हुआ।

विद्यार्थी जीवन में उन्होंने भाषण प्रतियोगिता, वादविवाद तथा गोष्ठियों में भाग लिया। परिणामस्वरूप पुरस्कार, पदक तथा प्रमाणपत्रों के रूप में भरपूर प्रोत्साहन मिला। माधुरी जी ने अंग्रेजी साहित्य से एम.ए. किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने पत्रकारिता, जनसंपर्क व विज्ञापन तथा ऐस्ट्रो-पामेस्ट्री (Astro-Palmistry) में डिप्लोमा किया।

बहुत से योग्यता प्रमाणपत्रों के बावजूद अपनी क्षमता के अनुसार उन्हें रोजगार मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। अनेक बार साक्षात्कार के लिए बुलाया गया परन्तु विकलांगता के कारण अनुपयुक्त बता दिया गया। अनेक वर्षों के संघर्ष के बाद सन् 1987 में उन्हें सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया में टेलिफोन ऑपरेटर का पद मिल पाया। आज भी वे इसी पद पर कार्यरत हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें आर्थिक स्वावलंबन प्राप्त

हुआ और वे सम्मानजनक जीवनयापन करने लगीं।

माधुरी को ज्योतिष में विशेष रुचि थी। व्यक्ति के भाग्य अथवा स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों को समझने की चाह ने उन्हें इसी क्षेत्र में गहन अध्ययन के लिए प्रेरित किया। ऐस्ट्रो-पामेस्ट्री (Astro-Palmistry) पाठ्यक्रम में प्रवेश पाना कठिन था परन्तु उन्होंने इस विषय में अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति तथा अधिगम क्षमता का विश्वास दिला कर अनुमति प्राप्त कर ही ली। वे ज्योतिष को एक विज्ञान मानती हैं जिसके माध्यम से लोगों के कष्ट का निवारण सम्भव है। आरंभ में माधुरी जी ने ज्योतिष परामर्श नि:शुल्क दिया। जब लोगों को अपनी समस्याओं के समाधान में उनके द्वारा बताए 'उपायों' के प्रति विश्वास होने लगा तो उन्होंने शुल्क लेना आरंभ कर दिया। उनकी मान्यता है कि व्यक्ति अपने भाग्य पर पड़ने वाले ग्रहों के नकारात्मक प्रभाव को कुछ अन्य विधियों के अतिरिक्त मूल्यवान पत्थर तथा हीरे धारण करके रोक सकता है। वे कभी-कभी नि:शुल्क 'गायत्री यज्ञ' करती हैं। उन्होंने 'स्टार एंड स्टाइल' जैसी पत्रिकाओं के लिए ज्योतिष संबंधी अनेक लेख लिखे हैं। वे संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रकाशित 'गुर्जरी' के अतिरिक्त ज्योतिषियों के भारतीय संस्थान तथा भारतीय संघ द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के लिए भी लिखती हैं।

माधुरी सामान्य रूप से महिला-कल्याण तथा विशेष रूप से दृष्टि-अक्षम महिला अधिकारों में गहन रुचि के कारण अस्मिता क्लब, नारी शक्ति सहकारी बैंक, राष्ट्रीय दृष्टिहीन संघ तथा राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ एसोसियेशन इत्यादि अनेक संगठनों की सदस्या हैं।

उन्हें अनेक पुरस्कार तथा सम्मान भी मिल चुके हैं। वर्ष 2003 में एन. एफ. बी. महाराष्ट्र द्वारा दृष्टिहीन-क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए उन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया । एन. ए. बी. , मुंबई ने उन्हें जनवरी, 2005 में 'नीलम कांगा स्मारक पुरस्कार' से सम्मानित किया।

ज्योतिष में अपूर्व रुचि के फलस्वरूप भी माधुरी देसाई को पुरस्कार तथा प्रशंसनीय टाइटल मिले हैं। अप्रैल 2004, में ज्योतिषियों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में उन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया तथा मार्च, 2005 में जगन्नाथपुरी, उड़ीसा में उन्हें 'वास्तु' पर हुए समारोह में अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। संभवत: ज्योतिष को व्यावसायिक स्तर पर अपनाने वाली वे भारत की प्रथम दृष्टिहीन महिला हैं। माधुरी देसाई की मान्यता है कि भगवान उन्हीं की मदद करता है जो स्वयं अपनी मदद करते हैं। वे वास्तव में 'शक्ति सम्पन्न महिला' हैं जो आत्म सम्मान एवं आर्थिक स्वावलंबनपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं। साथ ही साथ वे इच्छुक व्यक्तियों को महत्वपूर्ण परामर्श तथा सहायता प्रदान करती हैं।

•



# मरिता कारदोज
## महिला समाजसेवी

—मुक्ता अनेजा

नम्र किन्तु दृढ़, प्रतिभाशाली परन्तु अभिमान से अछूती, ईश्वर में अटूट विश्वास किन्तु अंधविश्वास से परे, आन्तरिक व्यक्तित्व को बाहर भी प्रस्तुत करने में सक्षम हैं--मरिता कारदोज। मरिता को देखने से ऐसा नहीं लगता कि उनके जीवन में कठिनाइयां आरम्भ से ही उग्र रूप धारण कर चुकी थीं। 6 मई, 1957 को मुम्बई में जन्म लेने वाली करदोज जन्मांध हैं। उनके माता-पिता के लिये यह विश्वास कर पाना बहुत मुश्किल था कि उनकी प्यारी बेटी की दृष्टि काले मोतिया 'ग्लोकोमा' की भेंट चढ़ चुकी है। फिर भी उन्होंने इस स्थिति का धैर्यपूर्वक सामना किया तथा अपनी बेटी के लिये उपयुक्त परिवेश को संवारने में जुट गये।

बचपन से ही मारिता को माता-पिता से भरपूर आर्थिक एवं भावात्मक सहयोग मिला तथा जीवन के प्रति उनके सकारात्मक दृष्टिकोण ने बालिका पर वांछित प्रभाव डाला। मरिता की शिक्षा 5 वर्ष की आयु में ही शुरू करवा दी गयी। शिक्षा के लिये दृष्टिवान बच्चों के स्कूल में प्रवेश दिलवाया गया। ऐसे स्कूलों में स्वाभाविक रूप से शिक्षा का माध्यम दृश्य-लिपि होती है तथा प्रारंभ में पढ़ने-लिखने पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। मरिता ने अपनी विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये माता-पिता के साथ मिलकर संघर्ष आरंभ किया। अध्ययन के लिए स्वयंसेवी वाचकों की सेवाएं ली गईं। कक्षा में प्रथम आकर मरिता ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का प्रमाण दिया। अनेक प्रखर बुद्धि वाले दृष्टिवान विद्यार्थियों को पीछे छोड़ते हुए, मरिता ने स्कूल में प्रथम स्थान प्राप्त किया। बोर्ड परीक्षा में वे महाराष्ट्र के दृष्टिबाधित

छात्र-छात्राओं की श्रेणी में प्रथम स्थान पर थीं। समाज व विद्यार्थियों में उन्होंने यह साबित कर दिया कि विकलांगता व्यक्ति के वास्तविक ज्ञान एवं क्षमता को कुंठित नहीं कर सकती।

श्रेष्ठता के लिये प्रयासरत कारदोज ने कॉलेज में भी सराहनीय प्रदर्शन किया। मुम्बई विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में बी. ए. पास करने के बाद मरिता ने सामाजिक कार्य (Social Work) में एम. एस. डब्ल्यू. करने का निर्णय लिया। उन्हें लगा कि इस विषय में उनकी स्वाभाविक क्षमता तथा रुचि है। उन्होंने एम. एस. डब्ल्यू. की परीक्षा अच्छे अकों के साथ उत्तीर्ण की।

अब प्रश्न नौकरी का था। यद्यपि उनकी प्रखर बुद्धि तथा योग्यता छात्र जीवन में ही सिद्ध हो चुकी थीं,फिर भी विकलांगता के कारण उनके सेवा हेतु प्रार्थनापत्रों पर विचार ही नहीं किया जाता था। इस पर भी मारिता ने उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा। स्वयं एवं भगवान में विश्वास तथा माता-पिता के प्रोत्साहन के बल पर वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करती रहीं। वर्ष 1986 में बृहत मुम्बई नगर निगम के जनस्वास्थ्य विभाग के अन्तर्गत एक अस्पताल में उन्हें नौकरी मिल गई। वे आज भी यहाँ पर चिकित्सकीय समाजसेवी के रूप में कार्यरत हैं। दूसरे लोगों की सहायता करने की इच्छा मरिता को अपने काम में अधिक रुचि के लिये प्रेरित करती रहती है।

उनके उत्तरदायित्व में परामर्श देना, पुनर्वास तथा कभी-कभी अस्पताल के रोगियों एवं उनके संबंधियों के लिये आर्थिक सहायता का प्रबंध करना भी सम्मिलित है। प्रारंभिक दौर में वरिष्ठ अधिकारियों तथा मरिता के सहकर्मियों को उनकी कार्य-क्षमता के विषय में संदेह था, परन्तु रोगियों एवं उनके संबंधियों की सोच भिन्न थी। धीरे-धीरे उनकी योग्यता को देखकर वहाँ के वरिष्ठ अधिकारियों तथा सहकर्मियों का व्यवहार बदलने लगा। मरिता अपनी संवेदनशीलता तथा सहृदयता के कारण समस्याएं लेकर आने वाले लोगों के साथ शीघ्रता से तारतम्य स्थापित कर लेती हैं, उनमें ऐसे लोगों को अपनी कठिनाइयां पूर्णरूप से सुलझाने के लिये सहायता देने का विशेष कौशल है।

अपने कार्यालय तथा समाज में वे विकलांगता के आधार पर कोई रियायत नहीं चाहतीं। वे अपने परिवेश के व्यक्तियों के साथ आत्मविश्वास एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करती हैं। अपने व्यवसाय के प्रति समर्पण के साथ-साथ वे दृष्टिबाधित व्यक्तियों की समस्याओं के लिये भी समय निकालती हैं। उनके विचार लेखन के माध्यम से भी सामने आये हैं।

मरिता कारदोज के अपने व्यवसाय के प्रति गंभीर, बुद्धिमत्ता तथा विचार पूर्ण दृष्टिकोण के फलस्वरूप उन्हें उपयुक्त पहचान तथा पुरस्कार मिले हैं। उन्हें वर्ष 1994 में सर्वोत्तम दृष्टिहीन कर्मचारी होने के लिये 'खम्बाता स्मारक पुरस्कार'



मिला। वर्ष का उत्कृष्ट कर्मचारी होने के लिये भी उन्हें भाभा अस्पताल द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। मरिता को उपयुक्त जीवनसाथी मिला है, उनके पति सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक निजी कम्पनी में सेवारत हैं। उनकी 14 वर्षीय बेटी स्कूल में पढ़ती है।

वे सौभाग्यवश मिले पारिवारिक सहयोग का महत्व समझती हैं। भगवान में उनकी आस्था उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करती है। दृष्टि विकलांग तथा समाज के मध्य क्षीण संबंध पर टिप्पणी करते हुए वे कहती हैं, "स्वयं को उस अंधेपन से मुक्त कीजिए जो आपको दृष्टिबाधित व्यक्तियों के साथ सामान्य व्यवहार करने से रोकता है।" प्रभु की कृपा से वे सभी लोगों, विशेषकर महिलाओं को भविष्य में अनेक वर्षों तक प्रेरणा प्रदान करती रहें!

•

# मोरेश्वर जे. धर्माधिकारी
## विशिष्ट वैज्ञानिक प्रतिभा

—मुक्ता अनेजा

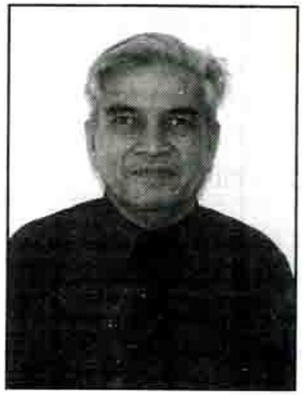

आकस्मिक विकलांगता जैसी आपदा किसी वैज्ञानिक मनोवृत्ति को कुंठित नहीं कर सकती है। वैज्ञानिक का जिज्ञासु मन आजीवन, निरन्तर रूप से अन्वेषण, निरीक्षण तथा संगठित कार्य में पूर्वानुराग से व्यस्त रहता है- यह तथ्य मोरेश्वर जे. धर्माधिकारी के जीवन से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है, जिन्हें प्रकृति ने 41 वर्ष की आयु में दृष्टि से वंचित कर दिया।

मोरेश्वर का जन्म 27 दिसम्बर, 1938 को ग्वालियर, मध्यप्रदेश में हुआ था। वे भौतिकशास्त्र के प्रतिभाशाली छात्र थे। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात, धर्माधिकारी भाभा परमाणु शोध केन्द्र (B.A.R.C.), मुम्बई में नियुक्त हुए। वे 1961 से केन्द्र के परमाणु भट्टी नियन्त्रण विभाग में सेवारत थे। उनका कार्य अभिकल्पन, विकास तथा नियन्त्रण प्रणाली को स्थापित करना था। वर्ष 1978 में वे प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा संगठन (I.A.E.A.) से प्राप्त फैलोशिप के फलस्वरूप अध्ययन के लिए जर्मनी में एक वर्ष तक रहे।

शोध एवं गहन अध्ययन की सफल अवधि के पश्चात उन्हें सन् 1979 में दृष्टिपटल रक्तस्राव होने लगा। यह एक भयानक आघात था। भारत लौटने से पूर्व उन्होंने जर्मनी में नेत्र विशेषज्ञों से सलाह ली, दरअसल वे दृष्टिपटल को लगातार क्षीण करने वाले रोग से पीड़ित थे।

1980 के मध्य तक वे पूरी तरह से दृष्टिबाधित हो चुके थे। यह एक



अकल्पनीय स्थिति थी। बड़ी आयु में दृष्टिहीन होना, किसी के लिए भी उसे अस्त-व्यस्त करने वाला अनुभव होता है परन्तु वैज्ञानिकों के लिए स्थिति और भी अधिक जटिल हो जाती है। उनके सहकर्मियों तथा अधिकारियों की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया उन पर दया करने तथा उन्हें अनुपयोगी समझने की थी।

कुछ समय पश्चात मोरेश्वर धर्माधिकारी ने इस नकारात्मक धारणा को अवांछनीय सिद्ध कर दिया। वे दृढ़तापूर्वक तथा परिश्रम के साथ नियन्त्रण प्रणालियों के संयोजन, अभिकल्पन तथा विकास का कार्य करते रहे। ऐसा वे अपनी प्रखर बुद्धि के प्रयोग तथा सहायकों को आवश्यक कार्य की स्पष्ट एवं विस्तृत बारीकियां समझाकर कर पाए। वें अपना काम धैर्यपूर्वक करते रहे। अन्ततः उनके साथियों को विश्वास हो गया कि मोरेश्वर विकलांगता के बावजूद अपना उत्तरदायित्व भली प्रकार वहन कर सकते हैं। निश्चित रूप से यह एक श्लाघनीय उपलब्धि है कि दृष्टिबाधा के बावजूद उन्होंने लगभग 19 वर्ष तक यथाशक्ति सेवा की। अनेक बार नवीन खोज के पीछे कोई साधारण विचार होता है। एक दिन धर्माधिकारी कार्यालय में बैठे सोच रहे थे कि दृष्टि विकलांगता से पूर्व किस प्रकार वे कम्प्यूटर आधारित नियन्त्रण प्रणाली का प्रयोग किया करते थे। एक साधारण, परन्तु विश्वासप्रद विचार मन में उभरा। उन्होंने सोचा, ''यदि मैं ब्रेल के माध्यम से कम्प्यूटर का उपयोग करूं तो कैसा रहेगा?'' इस विचार से उन्होंने 'ब्रेल इंटरप्रेटर' का विकास किया क्योंकि उनका मन कुछ नया कर दिखाने के लिए बेचैन था।

'ब्रेल इंटरप्रेटर' ऐसा इलेक्ट्रानिक की-बोर्ड होता है, जिसे कम्प्यूटर से सम्बद्ध कर दिया जाता है। ऐसा करने पर जो कुछ ब्रेल में टाइप किया जाता है, वह स्क्रीन पर दृश्य रूप में आने के साथ-साथ ध्वनि माध्यम से सुना भी जा सकता है। इस प्रकार ब्रेल इंटरप्रेटर प्रयोग करने वाला दृष्टिबाधित यह भी समझ लेता है कि स्क्रीन पर क्या सामग्री है। मोरेश्वर धर्माधिकारी ने ब्रेल इंटरप्रेटर की कुछ इकाइयां तैयार करवाईं तथा इस उपकरण का प्रदर्शन एन. ए. बी., मुम्बई में किया। वर्ष 1997 में उन्हें इस खोज के लिए 'उत्कृष्ट दृष्टिहीन कर्मचारी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। अनेक समाचारपत्रों में उनकी उपलब्धि की चर्चा की गयी तथा दूरदर्शन के मेट्रो चैनल पर भी उनका कार्यक्रम प्रसारित किया गया।

इस लौह पुरुष ने विकासोन्मुख लेख भी लिखे हैं। उन्होंने अंग्रेजी ब्रेल इंटरप्रेटर की अभिकल्पना तथा प्रयोग के विषय में एक प्रतिवेदन तैयार किया है। उन्होंने देवनागरी ब्रेल इंटरप्रेटर के सम्बन्ध में भी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।

श्री धर्माधिकारी न केवल उपयोगी विकास के लिए कार्यरत रहे बल्कि उनका पारिवारिक जीवन भी सुखद व सन्तोषजनक रहा है। उनकी पत्नी समाजशास्त्र तथा संगीत में कला निष्णात हैं। उनकी तीन बेटियां हैं और वे सब इंजीनियर हैं।

श्री धर्माधिकारी 1998 में दृष्टि अक्षमता के लगभग दो दशक पश्चात सेवानिवृत्त हुए। पिछले पाँच वर्षों में वे चार बार अपनी बेटियों से मिलने तथा दृष्टिहीनार्थ संस्थाएं देखने के उद्देश्य से संयुक्त राज्य अमेरिका जा चुके हैं। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी वे जीवन में सक्रिय हैं तथा एन. ए. बी., मुम्बई के आजीवन सदस्य के रूप में इसकी गतिविधियों में संलग्न हैं। वे बी. ए. आर. सी. (B.A.R.C.) सेवानिवृत्त एसोसिएशन तथा मराठी साहित्य संस्कृति एवं कला मन्दिर के भी सदस्य हैं।

श्री मोरेश्वर जे. धर्माधिकारी को इस तथ्य से बड़ी प्रेरणा मिलती है कि विकलांगता की सीमाओं के बावजूद भी व्यक्ति सृजनात्मक तथा रचनात्मक कार्य कर सकता है। अपने परिवार एवं सहकर्मियों से मिले सहयोग का वे आभारपूर्वक स्मरण करते हैं। वे अपने जैसी विकट परिस्थिति में फंसे व्यक्तियों को नकारात्मक विचारों के विरुद्ध चेतावनी देते हैं। दृष्टिबाधित व्यक्तियों में निहित क्षमता की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं, ''दृष्टि-अक्षम व्यक्ति की क्षमता का उपयुक्त मूल्यांकन कीजिए। उन्हें आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिए प्रोत्साहन तथा सहयोग दीजिए ताकि वे कुछ उपयोगी कार्य कर सकें। ऐसा करने से आपको आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।''



# मोहन चन्द्रसेकरन
## वायलिन आचार्य

—मुक्ता अनेजा

उन्नीस सौ चालीस के दशक के उत्तरार्द्ध में एक ग्यारह वर्षीय बालक ने अपनी प्रथम सार्वजनिक प्रस्तुति में ही श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। बालक का नाम था-- मोहन चन्द्रसेकरन। छोटी अवस्था से ही इस विलक्षण प्रतिभा की प्रशंसा होने लगी। कर्नाटक संगीत के परिवेश में पले-बढ़े चन्द्रसेकरन ने मात्र तेरह वर्ष की आयु में संगीत अकादमी, चेन्नई से सर्वश्रेष्ठ वायलिनवादक का पुरस्कार प्राप्त कर लिया था।

उनका जन्म 11 दिसम्बर, 1937 को एक संगीतकार परिवार में हुआ। दो वर्ष की अल्पायु में ही पीलिया रोग के फलस्वरूप वे दृष्टि से वंचित हो गए। दुर्भाग्यवश सात वर्ष की आयु में उनके पिता का देहान्त हो गया, परन्तु उनकी कुशल संगीतकार माता, चारुबाला मोहन ने बालक की संगीत एवं सामान्य शिक्षा के उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वहन किया। उनकी एकमात्र गुरु चारुबाला थीं, जिनके सानिध्य में चन्द्रसेकरन की संगीत प्रतिभा प्रस्फुटित होकर विकसित होने लगी। कुछ ही वर्षों में इस बाल कलाकार ने कर्नाटक संगीत के मर्म को आत्मसात कर लिया तथा संगीत में अपना व्यावसायिक जीवन आरम्भ किया। वे संगत तथा एकल दोनों रूपों में वायलिनवादन करते थे। संगीत में अपनी माताजी की निपुणता से प्रेरित होकर एम. चन्द्रसेकरन ने अपनी विशिष्ट शैली विकसित की। व्यापकता उनके वादन की विशिष्टता है। इसमें भावात्मक व बौद्धिक रूप से व्यक्ति के हृदय को आनन्दित करने हेतु कोमल, शान्त स्वरलहरी के साथ-साथ साहसपूर्ण संगीत का अद्भुत

सम्मिश्रण है। अपने उत्कृष्ट वायलिन वादन से उन्होंने विभिन्न देशों में संगीत प्रेमियों के हृदय में स्थान बना लिया है।

श्री चन्द्रसेकरन ने श्री अरिजाकुडी रामानुजा आयंगर, श्री बालासुब्रामण्यम, श्री मणि अय्यर, श्री सुब्रामण्या पिल्लई, श्री नारायण स्वामी एवं अन्य महान संगीतकारों के साथ संगत की है। श्री एन. रमणी, डॉ. एम. बालमुरली कृष्णा जैसे विख्यात संगीतज्ञों ने भी उनके साथ संगीत सभाएं की हैं।

सार्वजनिक जीवन में सफलता के साथ-साथ उनके व्यक्तिगत जीवन में भी आनन्द के अवसर आए। चन्द्रसेकरन ने सुश्री सी. पट्टाम्मल से विवाह किया, जो न केवल अच्छी गृहिणी अपितु श्रेष्ठ जीवन साथी भी साबित हुईं। उनकी एक बेटी तथा तीन बेटे हैं। बेटी पिता का अनुसरण करते हुए एक प्रसिद्ध वायलिन-वादक बन चुकी हैं, जिनका नाम जी. भारथी है।

चन्द्रसेकरन का मधुर संगीत लाखों लोग आकाशवाणी के माध्यम से सुनते रहे हैं। वे राजकीय संगीत महाविद्यालय, पालघाट के विजिटिंग प्रोफेसर भी रह चुके हैं। संगीत अकादमी, चेन्नई की सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने अनेक व्यक्तियों को अपनी विशेषज्ञता से लाभान्वित किया है।

इस विलक्षण वायलिन वादक की कला का रसास्वादन भारतीय श्रोताओं तक ही सीमित नहीं है, विदेशों में भी संगीत प्रेमी चन्द्रसेकरन की कला से आनन्दित होते रहते हैं। वर्ष 1984 में उन्होंने अपनी बेटी श्रीमती भारथी के साथ कनाडा में वहाँ की दृष्टिबाधितार्थ संस्था की सहायता के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किए। विदेशों में श्रोता उनको सुनकर सम्मोहित हो गए। संयुक्त राज्य अमेरिका में चन्द्रसेकरन ने 'शंकरालय' की सहायतार्थ वादन प्रस्तुत किया । वे वायलिन वादन के लिए मलेशिया, सिंगापुर तथा श्रीलंका भी जा चुके हैं। मलेशिया में भी उन्होंने विकलांगों की सहायतार्थ कार्यक्रम प्रस्तुत किया था।

श्री चन्द्रसेकरन की विलक्षण प्रतिभा वाद्य-संगीत तक ही सीमित नहीं है, वे गायन में भी अद्‌भुत कला से सम्पन्न हैं। गायन की शिक्षा भी उन्हें अपनी माँ से ही प्राप्त हुई। हाँ, बाद में उन्होंने शास्त्रीय गायन का प्रशिक्षण श्री विस्वरथा अय्यर, श्रीमती जयम्मल तथा अन्य प्रसिद्ध गायकों से प्राप्त किया। वे अपनी गम्भीर, झंकारयुक्त तथा मधुर वाणी से श्रोताओं को सम्मोहित कर देते हैं। वे भक्ति संगीत के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं। अपनी विलक्षण संगीत प्रतिभा के कारण वे आकाशवाणी द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलन में इसके आरम्भ वर्ष 1955 से ही भाग लेते आए हैं। उन्होंने भजनों के लिए धुनें तैयार की हैं। इस विशिष्ट संगीतकार की रचनाएं कैसेट तथा रिकॉर्डों पर भी उपलब्ध हैं।

श्री चन्द्रसेकरन को योग्यतानुसार अनेक सम्मान तथा पुरस्कार मिल चुके हैं।



भारत सरकार ने वर्ष 1986 में उन्हें 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया है। तमिलनाडु सरकार ने सन् 1982 में उन्हें 'कलयमामानि' का सम्मान प्रदान किया। रोटरी क्लब ने श्री चन्द्रसेकरन को वर्ष 1984, 1985 तथा 1989 में सम्मानित किया। 'मैसूरश्री टी. चोदियाह राष्ट्रीय सम्मान' सन् 1989 एवं उगाडी पुरस्कार (1993) भी चन्द्रसेकरन को प्राप्त हो चुके हैं जिनसे कर्नाटक संगीत के अन्तर्गत गायन तथा वादन में योगदान की जानकारी मिलती है।

अब वे युवा लोगों में संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न करने में असीम आनन्द अनुभव करते हैं। उन्होंने बहुत से व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया है तथा उनमें से कुछ तो प्रसिद्ध कलाकार भी बन चुके हैं। उनकी बेटी भारथी प्रसिद्ध वायलिन वादिका हैं तथा पुत्र मुरली, कुशल बाँसुरी वादक । इन दोनों ने संगीत के प्रति समर्पण की पारिवारिक परम्परा का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है।

•

# रवि कुमार अरोड़ा
## साकार हुआ जिनका सपना

—अंजिल सेनगुप्ता

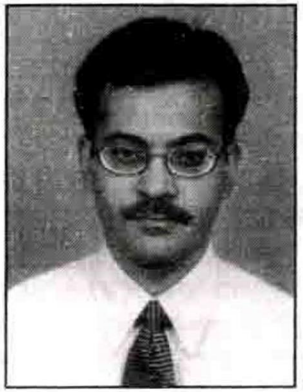

जन्म से स्थायी न्यून एवं निकट दृष्टि बाधा से ग्रस्त रविकुमार जीवन में अपने उद्देश्य के विषय में सुस्पष्ट थे। रवि दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि वे कभी भी संकीर्ण मानसिकता वाले नौकरशाहों को अपना उचित अधिकार छीनने का अवसर नहीं देंगे।

रवि कुमार अरोड़ा का जन्म मधुपुर, झारखण्ड में 24 सितम्बर, 1973 को हुआ। उन्होंने अपने गृहनगर में एक सरकारी स्कूल में शिक्षा प्राप्त की तथा उच्च शिक्षा भी मधुपुर कॉलेज से ही प्राप्त की। परन्तु वे श्यामपट्ट नहीं देख पाते थे। ''छोटे गाँव में सरकारी विद्यालय भी वहाँ के निर्धन विद्यार्थियों की तरह संसाधनहीन होते हैं, न उनमें भौतिक सुविधाएं होती हैं और न ही प्रशिक्षित शिक्षक,'' रवि कहते हैं।

स्कूल तथा कॉलेज में मित्र और घर में माताजी रवि की सहायता करती थीं। उनके माता-पिता सदा उनकी प्रेरक शक्ति रहे और उन्होंने उन्हें सहयोग व प्रोत्साहन भी दिया। ''आज जो कुछ भी मेरी उपलब्धि है उसका श्रेय मेरे माता-पिता को जाता है,'' रवि मानते हैं।

वे कहते हैं, ''मेरी अवशिष्ट दृष्टि 6/60 है (सामान्य दृष्टि 6/6 होती है)। तथा मैं कागज अथवा पुस्तक को आँखों के बहुत पास रखकर ही पढ़ सकता हूँ। जब कोई मुझे पहली बार यह सब करते देखता है तो कुछ अटपटे प्रश्न करता है। कुछ समय बाद वह मेरी वास्तविकता समझ जाता है और तब इन सब प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं रहता।''



उनके स्वावलम्बी आचरण ने उन्हें परीक्षाओं में वाचक या श्रुत लेखक का प्रयोग नहीं करने दिया। अत: वे परीक्षाओं में उत्तर स्वयं लिखते थे।

रवि अरोड़ा वास्तव में कुछ सार्थक कर गुजरने की इच्छा से प्रेरित थे। अपने देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण उपाय करने हेतु सरकारी अधिकारी बनना एक सशक्त माध्यम है क्योंकि उनके पास पर्याप्त संसाधन व शक्ति होती है।

उनके अनुसार, ''मैंने सिविल सेवाओं के सदस्य के रूप में समाज की सेवा का निश्चय किया है। सिविल सेवा जनसेवा का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है। यद्यपि नीतियां सरकार द्वारा निर्मित की जाती हैं परन्तु उनको लागू करने का उत्तरदायित्व अधिकारीतंत्र पर होता है। विकलांगता अधिनियम के विषय में भी संसद द्वारा बनाई गई नीति का उसकी भावना के अनुरूप अनुपालन सुनिश्चित नहीं किया जा सका है। इसीलिए दूसरे हजारों व्यक्तियों की तरह मुझे भी समस्याओं का सामना करना पड़ा। सरकारी अधिकारी के रूप में हमें नियमों की वास्तविक भावना के अनुरूप कार्य करना होता है। मैं अपने सेवाकाल में इसी सिद्धान्त का पालन करूँगा।''

अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षा-तैयारी के लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है- कई विषयों का अध्ययन करना पड़ता है, समसामयिक वैश्विक मामलों का ध्यान रखना पड़ता है तथा अन्य बातों के साथ-साथ तर्क-कौशल को परिष्कृत करना पड़ता है। उन्होंने अपने स्वप्न साकार करने के लिए भरसक प्रयास किए। स्नातक होने के पश्चात रवि कुमार ने भारत सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय में सहायक के रूप में नौकरी आरम्भ की। ''मन्त्रालय में लगभग समस्त फाइलों की प्रक्रिया सहायक के हाथों से आरम्भ होती है। यह नितान्त गतिहीन नौकरी है।''

लेकिन उन्होंने जीवन में अखिल भारतीय सेवा में नियुक्ति का अपना लक्ष्य नहीं छोड़ा। कार्यालय से घर लौटकर वे अपने दीर्घकालिक स्वप्न की पूर्ति हेतु पुस्तकें तथा अन्य सामग्री लेकर बैठ जाते। वास्तव में सच ही कहा गया है कि धैर्य और परिश्रमशीलता के परिणाम मधुर व सुखद होते हैं। यह उनकी अथक मेहनत एवं उत्साह का ही परिणाम था कि वर्ष 2001 में उन्होंने अखिल भारतीय सेवा की आरम्भिक तथा मुख्य लिखित परीक्षाओं और फिर साक्षात्कार में सफलता प्राप्त की। रविकुमार किसी आरक्षण के नहीं अपितु योग्यता के आधार पर 325वें स्थान पर आए तथा उनका चयन भारतीय डाक सेवा के लिए हो गया।

यही वह बिन्दु था जहाँ उनका सामना एक कठिन बाधा से हुआ। उन्हें आधार पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए सूचना प्राप्त हुई परन्तु चिकित्सा मण्डल ने चिकित्सा जाँच के पश्चात उन्हें ''आसामान्य दृष्टि'' के आधार पर समस्त सेवाओं के

लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया।

यह एक अभूतपूर्व आघात था। रवि अरोड़ा इस अन्यास को चुपचाप कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने दिल्ली उच्च न्यायालय में इसके विरुद्ध याचिका प्रस्तुत की। 15 अप्रैल, 2004 के दिन अपने ऐतिहासिक निर्णय में उच्च न्यायालय ने कहा, ''याचिकाकर्ता (श्री रवि अरोड़ा)बिना किसी सहायक के लिखित परीक्षा में बैठे तथा सफल हुए। विशेषज्ञों के दल ने उन्हें साक्षात्कार में उपयुक्त समझा। पद पर नियुक्ति से इन्कार करना न्याय का उपहास होगा।'' न्यायालय ने आगे कहा, ''अत: याचिकाकर्ता को वर्ष 2001 की परीक्षा में प्राप्त स्थान के आधार पर अपनी योग्यता एवं वरीयता के अनुसार नियुक्ति का अधिकार है तथा उन्हें भारतीय डाक सेवा अथवा समकक्ष सेवा में नियुक्त किया जाए।''

सम्प्रति श्री अरोड़ा भारतीय डाक सेवा में परिवीक्षा पर हैं तथा पंजाब में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष सरकारी अपील लम्बित है। ''मेरी नियुक्ति सशर्त है और अपील के निर्णय पर निर्भर है,'' वे स्पष्ट करते हैं।

परीवीक्षक के रूप में रविकुमार अरोड़ा अपने दैनिक कार्यक्रम के अनुसार सेवारत हैं। उनके अनुसार, ''मेरे मुख्य कर्त्तव्य फाइलें निबटाना तथा कार्यालयों का निरीक्षण है तथा इसमें मेरी न्यून दृष्टि बाधक नहीं है।''

श्री अरोड़ा को सन् 2004 में अपने लिए न्याय सुनिश्चित करने हेतु अभूतपूर्व संघर्ष के लिए हेलन केलर पुरस्कार प्रदान किया गया । उनका सफलता-मंत्र है, ''आप जो कुछ भी करते हैं, उसमें श्रेष्ठता हेतु भरपूर प्रयास करें। अपने काम पर ध्यान केन्द्रित करें, दूसरे जो कुछ कहते हैं, उसकी कभी चिन्ता न करें।'' श्री रवि कुमार का परामर्श है, ''श्रेष्ठता हेतु प्रयास करें किन्तु किसी भी निकृष्ट परिणाम के लिए तैयार रहें,'' श्री अरोड़ा इसी उक्ति में विश्वास रखते हैं। उनका विचार स्वागत योग्य है क्योंकि उनके दृढ़ निश्चय से भारत सरकार की उच्चतर सेवाओं में भेदभाव की अभेद्य दीवार में एक दरार तो पैदा हो ही गयी है।

•



# एल. सुब्रामणि
## उदीयमान पत्रकार

—अर्जुन सेनगुप्ता

किसी अन्य व्यक्ति के दर्द एवं संघर्ष को लेखन के माध्यम से प्रस्तुत करना सामान्यत: बहुत कठिन होता है। सम्बद्ध व्यक्ति की अधिकतर भावना तथा संघर्ष की चुभन इस प्रक्रिया में खो जाती है, परन्तु कुछ व्यक्तियों का असीम अध्यवसाय लेखनी उठाने के लिए न केवल प्रेरित करता है अपितु बाध्य सा कर देता है। 6 जुलाई, 1973 को जन्मे एल. सुब्रामणि का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही है।

वर्ष 1988 की बात है जब एक दृष्टिबाधित किशोर एक से अधिक अर्थों में परीक्षा दे रहा था। यह कोई और नहीं बल्कि एल. सुब्रामणि ही थे, जिन्हें दृष्टिबाधा के बावजूद परीक्षा में स्वयं लिखना पड़ रहा था। कुछ समय पहले ही उन्हें ज्ञात हुआ था कि वे रेटिनाइटिस पिग्मेन्टोसा से पीड़ित थे। नमी, लिखाई की मेहनत और परिणाम के भय का मिश्रण उनकी कनपटी से चली पसीने की बूँद को ठोड़ी तक पहुँचते-पहुँचते एक क्षीण जलधारा में परिवर्तित कर देता था। परीक्षा समाप्त होने पर उन्होंने चैन की साँस ली तथा सुस्त कदमों से घर पहुँचकर निश्चित रूप से उनके मन में भी अन्य विद्यार्थियों की तरह यही प्रश्न उठा होगा, 'क्या मैं पास हो जाऊँगा।'

अनेक कारणों से उनके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो सकता था। उनकी दृष्टि तेजी से घट रही थी, वे मुश्किल से ही कुछ देख पाते थे तथा उनके माता-पिता पर तो मानों दुखों का पहाड़ ही टूट पड़ा था। लेकिन फिर भी सुब्रामणि के चरित्र में कुछ

ऐसा था जिसने उन्हें घोरतम अन्धकार में भी संघर्ष करने तथा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया था। आज वही गुण उन्हें हार मानने से भी रोक रहा था।

उन्हें याद है, ''यद्यपि डॉक्टरों ने बताया था कि बाद में चलकर मुझे दृष्टिबाधा का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु इसका सामना तो आश्चर्यजनक रूप से जल्दी ही करना पड़ गया, अर्थात निदान के केवल दो वर्ष पश्चात''--वे उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययन कर रहे थे, घटती हुई दृष्टि के कारण एक ही प्रश्न बार-बार उनके मन में उठता था कि आखिरकार वे परीक्षा कैसे देंगे? देरी के कारण सरकारी शिक्षा विभाग ने उन्हें श्रुतलेखक देने से इन्कार कर दिया था। अत: उन्हें परीक्षा में स्वयं ही लिखना पड़ा। परीक्षा फल उनके लिए आशातीत सफलता का सन्देश था। होता भी क्यों नहीं, ''मेरी आशा के विपरीत मुझे उस परीक्षा में 64 प्रतिशत अंक प्राप्त हुए जिसे मैंने दृष्टिबाधित छात्र के रूप में लिखा था।'' तत्पश्चात उन्होंने अनेक परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। सम्प्रति वे बंगलोर के एक प्रसिद्ध समाचारपत्र 'डेकन हेराल्ड' के सम्वाददाता हैं। स्मरण शक्ति पर थोड़ा जोर डालते हुए वे अपनी दृष्टिबाधा के प्रारम्भिक दिनों के विषय में कहते हैं, ''मेरे माता-पिता को गहरा आघात लगा था तथा उनके अनुसार मेरा जीवन आरम्भ होने से पहले ही समाप्त हो गया था। कुछ सम्बन्धियों का परामर्श था कि मैं घर पर रहकर ही पत्राचार के माध्यम से बी.ए. करूँ। इस सलाह को मैंने तुरन्त अस्वीकार कर दिया।''

तमिलनाडू के छोटे से शहर सेलम में जन्मे सुब्रामणि की आँखें आरम्भ से ही क्षतिग्रस्त थीं। 5 वर्ष की आयु से ही उन्हें निकट दृष्टि की समस्या का सामना करना पड़ा था और 1988 में ज्ञात हुआ कि वे रेटिनाइटिस पिग्मेन्टोसा से पीड़ित थे। यद्यपि उन्हें अपने परिवार से अत्यन्त सीमित सहयोग ही मिला परन्तु उनकी माता श्रीमती एन. विजय लक्ष्मी से उन्हें बहुत मदद मिली जिन्होंने अपने बेटे को सदा प्रेरित किया तथा कॉलेज जाने के लिए भी प्रोत्साहित किया। उन्होंने शिक्षा संस्थाओं में घूम-घूमकर ऐसे लोगों के विषय में जानकारी एकत्र की जो उनके बेटे को स्वीकार करे तथा उसकी महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति में सहयोग दे सके। अन्तत: उन्हें लॉयोला कॉलेज, चेन्नई, जैसा उपयुक्त कॉलेज मिल ही गया जहाँ से सुब्रामणि ने पहले बी.ए. और फिर एम.ए. किया।

''कॉलेज में प्रवास के दौरान मैंने कुछ बहुत ही अच्छे दोस्त बनाए जिनमें से कुछ आज भी मेरे घनिष्ट मित्र हैं। वे साइकिल पर मेरे घर पर आते और मेरे लिए आवश्यकता की अध्ययन सामग्री रिकार्ड करते। महिलाओं की एक अनौपचारिक संस्था 'रीडर्स एसोसिएशन फॉर द ब्लाइण्ड', चेन्नई ने भी मुझे अध्ययन में सहयोग दिया और मेरे तथा कॉलेज के अन्य तीस दृष्टिबाधित छात्रों के लिए श्रुत लेखक की सेवाएं भी प्रदान कीं'', सुब्रामणि ने बताया।

यह कॉलेज के दिनों की ही बात है कि जब सुब्रामणि ने पत्रकारिता के लिए



कोशिश शुरू की थी। वे कहते हैं, ''मैं लोगों से बातचीत करता था तथा उनके विषय में जानकारी प्राप्त करना मुझे रुचिकर प्रतीत होता था। दृष्टिबाधित व्यक्ति के रूप में शुरू में ही अनेक व्यक्तियों से पारस्परिक व्यवहार के फलस्वरूप मैं अपनी समस्याओं को विभिन्न प्रकार से सुलझाना सीख पाया।''

लेकिन प्रश्न उठता है कि पत्रकारिता का विचार उनके मन में कैसे आया? दरअसल इसका श्रेय मेरे लेखों को जाता है। सुब्रामणि ने बताया, ''दृष्टिबाधा से पूर्व भी मैं खेलों में बहुत रुचि लेता था। विशेषकर टेनिस देखना मुझे बहुत पसन्द था। जब मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी, उन्हीं दिनों मैंने एडबर्ग तथा बेकर के मध्य विम्बलडन फाइनल्स का खेल देखा, फलत: उसके बाद आँखों की असीम पीड़ा भी झेली और मैच के अन्त में अपर्याप्त शब्दावली तथा अशुद्ध व्याकरण का प्रयोग करते हुए मैंने अपनी प्रतिक्रियाएं भी लिखीं। मुझे क्या मालूम था कि अन्तत: मैं यही करने वाला था।'' कॉलेज से निकलकर सुब्रामणि के कुछ दिन अनिश्चय की स्थिति में बीते। तत्पश्चात अपने मित्रों की सलाह पर उन्होंने पत्रकारिता के पी.जी. डिप्लोमा में दाखिला ले लिया। ''इस पाठ्यक्रम के परिणामस्वरूप मैं 'द न्यू इण्डियन एक्सप्रेस' में तीन महीने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने पहुँचा। मैंने 1998 में पहला लेख लिखा तथा जब मेरे शुभचिन्तकों ने बताया कि मेरा व्यावसायिक जीवन उज्जवल होगा तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। इससे मेरे परिवार के उन सदस्यों को भी सही उत्तर मिल गया जिनका विचार था कि मैं इस उद्देश्य के आसपास भी नहीं पहुँच सकता।''

उन्हें इस समाचार पत्र में स्थाई रोजगार मिलने ही वाला था कि ऐन वक्त पर भाग्य ने फिर पलटा खाया, ''मुझे पूर्णकालिक आधार पर रोजगार देने का निर्णय लेना प्रबन्धकों के लिए कठिन साबित हो रहा था क्योंकि वे मेरी क्षमताओं के विषय में पूर्णतया विश्वस्त नहीं थे। प्रतीत होता है कि कुछ उच्चपदस्थ प्रबन्धकों ने प्रश्न उठाया होगा कि मैं स्वतन्त्र रूप से कैसे काम कर सकूँगा? अत: मुझे फ्रीलान्स आधार पर ही काम करना पड़ा,'' वे कहते हैं।

असीम धैर्य एवं अध्यवसाय के धनी सुब्रामणि अपने मित्रों के सहयोग के फलस्वरूप मन्थर गति से आगे बढ़ते रहे। उन्हें 'चेन्नई ऑनलाइन' में सफलता मिली तथा वे अपने मनपसन्द क्षेत्र, खेलों के सम्बन्ध में लेखन कार्य का आनन्द लेने लगे। उन्होंने टेनिस की दो अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं पर रिर्पोटिंग की। इस तरह उन्होंने अतिरिक्त अनुभव प्राप्त किया तथा अपने काम को सन्तोषजनक पाया। खेलों, विशेषकर टेनिस पर रिपोर्टिंग करना बहुत आसान है क्योंकि आप कोर्ट के दोनों ओर गेंद के गिरने की आवाज सुन सकते हैं और फिर चेयर अम्पायर स्कोर भी बताता है। सम्भवत: उस वक्त इस तरह की रिर्पोटिंग करने वाले वे पहले दृष्टिबाधित पत्रकार थे।

सुखद समय बहुत सीमित था। डॉट-कॉम उद्योग धराशायी हो गया और उनकी कम्पनी भी धूल में मिल गई। श्री सुब्रामणि अपने लचीलेपन के साथ यथावत आगे बढ़ते रहे। उन्होंने एक कम्पनी में भाषा सलाहकार के रूप में नौकरी शुरू की जहाँ पर वे जापानी से अनूदित तकनीकी दस्तावेजों की जाँच किया करते थे। तीन महीने में ही उन्होंने अपने भाषा ज्ञान में एक और भाषा सम्मिलित कर ली। वे अब जापानी बोल सकते थे। ''कम्पनी के निदेशक ने एक बार मुझे बुलाया और मुझसे कार्यालय के सात जापानी कर्मचारियों को अंग्रेजी सिखाने के लिए कहा। मुझे यह बड़ा ही रुचिकर प्रतीत हुआ क्योंकि समान अनुदेशन माध्यम के अभाव में मुझे अधिकतर चीजें इन लोगों को इशारों के द्वारा ही स्पष्ट करनी पड़ती थीं। आजकल मेरा जापानी वार्तालाप स्तर किसी भी जापनी वक्ता के समान है, इसकी लिपि पर अभी मुझे पूरा नियन्त्रण प्राप्त करना बाकी है'' वे कहते हैं।

श्री सुब्रामणि ने 2003 में एक बार पुन: लेखन क्षेत्र में जाने का निश्चय किया। ''2003 में जब मैंने पत्रकारिता के क्षेत्र में लौटने का निर्णय लिया तो 'साफिल' से त्यागपत्र दे दिया तथा स्वयं को बंगलोर से प्रकाशित समाचार-पत्रों के लिए काम करने में व्यस्त रखा। इसी बीच मैंने फिल्म अभिनेत्री पद्मनी के संस्मरणों के लिए भी शोध कार्य किया,'' वे बताते हैं।

कुछ समय पश्चात श्री सुब्रामणि को डेकन हेराल्ड में एक नौकरी के साक्षात्कार हेतु पत्र मिला। ''मेरे सम्पादक श्री शान्थ कुमार मेरी स्थिति समझ गये। एक अभूतपूर्व विजय भावना से मेरा हृदय ओत-प्रोत हो गया क्योंकि मैं एक प्रसिद्ध दैनिक के सम्पादक को यह समझाने में सफल हो गया था कि मुझमें एक सफल पत्रकार के गुण हैं। मैं अप्रैल, 2004 से डेकन हेराल्ड में सम्पादन तथा लेखन कार्य में योगदान दे रहा हूँ। मैं विकलांगता सहित अनेक विषयों पर लिखता हूँ। दुर्भाग्यवश खेलों पर अभी मुझे कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है,'' वे कहते हैं। श्री सुब्रामणि अभी तक कमल हसन से लेकर लिएण्डर पेस तक अनेक गणमान्य व्यक्तियों का इंटरव्यू ले चुके हैं तथा उन पर लेख लिख चुके हैं। वे प्रौद्योगिकी का यथासम्भव प्रयोग करते हैं। जापान से लौटकर उनके भाई ने उन्हें स्पीच सॉफ्टवेयर जॉज (Jaws) उपहार में दिया। कार्य के अतिरिक्त उनके जीवन का केन्द्र-बिन्दु अब उनकी पत्नी अनुराधा है। श्री एल. सुब्रामणि का उदाहरण प्रेरणा का एक अविरल स्रोत है। समस्त कठिनाइयों तथा बाधाओं को परास्त कर उन्होंने स्वयं को विजेता सिद्ध किया है तथा दूसरों के लिए एक मिसाल कायम की है।

•



# विक्रम डालमिया

## मिट्टी को सोना बनाने वाला

—प्रिया वर्धन

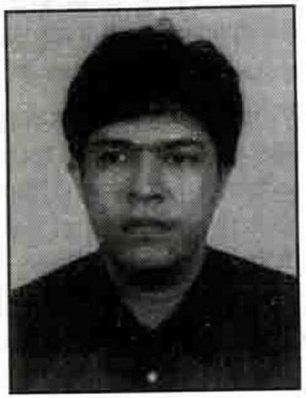

वे हानि को लाभ तथा असफलता को सफलता में परिवर्तित करने की कला से परिपूर्ण हैं--इसे विक्रम डालमिया का सही परिचय कहा जा सकता है।

वर्ष 1994 में विक्रम के पिता की कम्पनी भारी घाटे में डूबी हुई थी और उन्हें 20 लाख रुपये से अधिक का कर्जा भी चुकाना था। सत्य यह था कि कम्पनी बन्द होने के कगार पर थी। विक्रम डालमिया ने ऐसी विकट परिस्थिति में उसका उत्तरदायित्व सम्भाला। इस ऐतिहासिक परिवर्तन के कुछ महीने बाद ही उनकी कम्पनी ने लाभ कमाना आरम्भ कर दिया तथा विक्रम के पिता कर्ज भी चुका पाए।

वर्ष 2001 में कम्पनी का उत्पादन 20 लाख से बढ़कर एक करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 2002 में श्री डालमिया ने फिलिप्स इण्डिया लिमिटेड की घाटे में चल रही सहायक इकाई, प्लास्टैक्निक्स (Plastechnics) को बाजार से ऋण लेकर खरीदा। कुछ समय पश्चात वह लाभदायक इकाई बन गई। आज वह सफलता की नई ऊँचाइयाँ छू रही है। यह सब कमाल उस व्यक्ति ने कर दिखाया जिसे दृष्टिबाधा के फलस्वरूप पिता ने भी खोटा सिक्का समझ लिया था। उनका कथन है, ''मेरे संघर्ष तथा बाधाओं का स्रोत बाहरी संसार से अधिक स्वयं मेरा परिवार था।''

24 अप्रैल, 1969 को जन्मे विक्रम डालमिया को 12 वर्ष की आयु में रतौंधी (Night Blindness) का अनुभव होने लगा। बाद में पता चला कि वे रेटिनाइटिस पिग्मेन्टोसा (Retinitis Pigmentosa) से ग्रस्त हैं, जिसमें दृष्टि क्षीण से क्षीणतर

होती चली जाती है तथा अन्ततः अनेक मामलों में समाप्त हो जाती है। इस आघात से उभरने के बाद डालमिया परिवार ने सम्भावित दृष्टिहीनता को रोकने के लिए हर प्रकार के चिकित्सा उपाय किये। विक्रम को आधुनिकतम उपचार हेतु सन् 1991 में क्यूबा भी भेजा गया। इस परिवार को विकलांगता तथा इसके पुनर्वास के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी। इस विषय में वे 'अनभिज्ञ तथा बहुत निष्क्रिय' थे।

स्कूली शिक्षा बिना किसी बाधा के सम्पन्न हो गयी क्योंकि दृष्टिबाधा का आरम्भ दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात हुआ। कॉलेज में उनके अनुसार, ''मैंने न तो कभी अधिकारियों व शिक्षकों को बताया और न ही वे मेरी विकलांगता के विषय में जानते थे।'' उन दिनों के सम्बन्ध में वे कहते हैं, '' मैं अपनी स्मरण शक्ति व मित्रों पर निर्भर करता था। मुझे तो यह भी जानकारी नहीं थी कि परीक्षाओं के दौरान मैं श्रुत-लेखक का प्रयोग कर सकता था।'' इसका अभिप्राय यह है कि वे उत्तर स्वयं लिखते थे। हाँ, उनके मित्र प्रश्नपत्र पढ़कर सुना देते थे। वर्ष 1991 में बी. ए. करने के पश्चात विक्रम के पिताजी ने उनसे व्यापार में सहयोग देने के लिए कहा। वरिष्ठ डालमिया का विश्वास था कि इस तरह विक्रम को समय व्यतीत करने का अच्छा साधन मिल जायेगा तथा उनके अधिक से अधिक आदेशों के अनुसार वह आज्ञाकारी पुत्र की भाँति कार्य कर लेगा। परन्तु विक्रम को यह स्वीकार्य नहीं था और उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इसके विपरीत उनका विश्वास था कि यदि कम्पनी सम्बन्धी समस्त अधिकार उन्हीं के पास होंगे साथ ही कम्पनी मामलों में निर्णय-शक्ति उनके हाथों में होगी तो वे व्यापार को अपेक्षाकृत अधिक कुशल एवं लाभदायक ढंग से चला पाएंगे। अन्ततः वह क्षण सन् 1994 में आ ही गया जब कम्पनी लगभग अवश्यम्भावी अन्त की ओर बढ़ रही थी। उनके पिता झुके तथा उन्होंने विक्रम को उत्तरदायित्व सौंप दिया। इसके पश्चात विक्रम डालमिया ने एक नया इतिहास रच डाला।

विक्रम डालमिया का सफलता सूत्र सुगम है, ''अपने काम को समझो, और उसे दक्षता के साथ करो, स्वयं की उपस्थिति को प्रदर्शित करो तथा थोड़ा सा उत्साही और तेज दिखने का भी प्रयास करो।'' परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनकी व्यापार-यात्रा कठिनाइयों से मुक्त थी।

आरम्भ में डालमिया कम्पनी के प्रमुख क्रय-स्रोत 'फिलिप्स इण्डिया' में ही कुछ संशयवादी वातावरण था। परन्तु जब विक्रम ने बताया कि वह अपनी उत्पादकता के आधार पर ही व्यापार करेंगे तो फिलिप्स इण्डिया की आपत्ति समाप्त हो गयी। फिलिप्स इण्डिया द्वारा अपनी सहायक कम्पनियों के लिए आयोजित गुणवत्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान संशयवादियों की संख्या तथा आशंका अपेक्षाकृत अधिक मुखर हो उठी। इस बैठक में फिलिप्स के समस्त शीर्षस्थ प्रबन्धक सम्मिलित होने वाले थे तथा विक्रम को परामर्श दिया गया कि वे बैठक में अपने



पिता के साथ आएं, उन्हें चिन्ता थी कि दृष्टिबाधित व्यक्ति ऐसे मंच पर न जाने कैसा व्यवहार करे। परन्तु उन्होंने सबकी अवहेलना करते हुए , अकेले जाने का निर्णय लिया तथा बैठक में आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बन गये।

श्री डालमिया का कम्पनी-संचालन का ढंग दूसरों से भिन्न है। वे प्रेरक परिवेश के निर्माण पर अधिक बल देते हैं। यही कारण है कि कर्मचारी तत्परतापूर्वक उन्हें सहयोग प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त वे आधुनिक प्रौद्योगिकी का भरपूर प्रयोग करते हैं। उनके पास टॉकिंग-डायरी, टिप्पणी लेखन व लेखाजोखा रखने के लिए कम्प्यूटर एवं लैप-टॉप हैं।

सफलता के फलस्वरूप उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। अपने कार्यक्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धि के लिए उन्हें वर्ष 1997 में बजबज के रोटरी क्लब तथा बी. पी. सी. एल. ने पुरस्कृत किया। इसके अतिरिक्त अनेक रोटरी एवं लॉयन्स क्लबों ने उनका अभिनन्दन किया है।

व्यापार के अतिरिक्त वे एन. ए. बी., पश्चिम बंगाल शाखा के मानद संयुक्त सचिव हैं तथा दृष्टिहीनार्थ क्रिकेट चैम्पियनशिप में क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पश्चिम बंगाल की ओर से खेल चुके हैं।

श्री डालमिया को भारत में विकलांगता सम्बन्धी प्रगति की जानकारी अपने क्यूबा दौरे में मिली। लौटने पर उन्होंने इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त की तथा अन्य दृष्टिबाधितों से सम्पर्क भी किया। तुलना करते हुए वे कहते हैं कि भारत की अपेक्षा विदेशों में सड़क व यातायात सुविधाएं अधिक विकलांग-उपयोगी हैं। वे अपने अधिकारों के विषय में अधिक जागरूक हैं तथा स्वावलंबी भी अधिक हैं। भारत में, ''मेरा विचार है कि प्रौद्योगिकी (विशेषकर अपेक्षाकृत सस्ते दामों पर आजकल उपलब्ध प्रौद्योगिकी) ने जीवन की गुणवत्ता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। फिर भी जागरूकता अभियान को अधिक गहनता एवं शक्ति से व्यापक बनाने की आवश्यकता है।''

श्री विक्रम डालमिया का वैवाहिक जीवन सुखद है तथा उनका पाँच वर्ष का एक बेटा है। लोगों के लिए उनका सन्देश है, ''किसी को विकलांगता के कारण नजर अंदाज मत कीजिए।'' और जो व्यक्ति उन्हीं की तरह सफल बनना चाहते हैं, उनके लिए सन्देश है, ''सकारात्मक तथा लक्ष्य-केन्द्रित दृष्टिकोण अपनाओ।''

•

# वेद प्रकाश वर्मा

## श्रेष्ठता के उद्दीप्त प्रतीक

—मुक्ता अनेजा

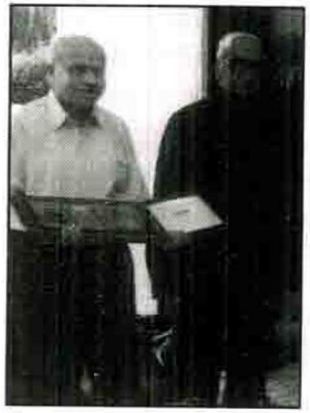

**प्रो.** वेद प्रकाश वर्मा ने प्रतिभाशाली छात्र, प्रवीण शिक्षक, उच्चकोटि के लेखक तथा असाधारण समाज-शास्त्री के रूप में "जहाँ चाह, वहाँ राह" वाली पुरानी परन्तु सदाबहार कहावत को चरितार्थ कर दिखाया है। उनका जीवन-वृतान्त साहस, दृढ़ निश्चय, अध्यवसाय एवं अजेय प्रतीत होने वाली बाधाओं को ललकारने वाली यथार्थ-कथा है।

9 अक्टूबर 1934 को बहावलपुर, पाकिस्तान में जन्मे वर्मा जी की दृष्टि रोहे (Trachoma) के फलस्वरूप लगभग 10 माह की आयु में ही जाती रही। उनका संबंध एक साधारण परिवार से था और उनके पिता कराची सम्भाग में सहायक स्टेशन मास्टर थे।

बालक वेद प्रकाश के माता-पिता को उनकी दृष्टि बाधा ने विचलित नहीं किया। वर्मा जी के अनुसार माता-पिता का व्यवहार उनके तथा उनकी विकलांगता के प्रति सकारात्मक था, न तो उनकी उपेक्षा की गई और न ही अनावश्यक सुरक्षा प्रदान की गई। निश्चित रूप से ऐसे सकारात्मक व्यवहार की पहली प्राथमिकता बालक के लिये उपयुक्त शिक्षा परिवेश की खोज थी। डॉ. वर्मा को स्वतंत्रता-पूर्वक रहन-सहन का आरंभिक प्रशिक्षण उनके स्नेही माता-पिता द्वारा प्रदान किया गया। 10 वर्ष की आयु में उन्हें अमृतसर स्थित दृष्टिबाधितार्थ विद्यालय में प्रवेश दिलवाया गया। विद्यालय परिवेश ने उनका सामना अनेक चुनौतियों तथा अधिगम अवसरों से



करवाया। वहाँ ब्रेल पाठ्य पुस्तकों व सहायक उपकरणों की कमी तो थी ही, साथ ही गतिशीलता एवं अनुस्थितिज्ञान के प्रशिक्षण का भी अभाव था। परन्तु यहीं पर वेद प्रकाश जी ने कठिनाइयों से जूझने तथा परिश्रम के फलस्वरूप उनका समाधान ढूंढ़ने के प्रथम पाठ सीखे। इन्हीं दिनों वेद जी की वाचन में उत्कृष्ट रुचि उत्पन्न हुई। उन्होंने विद्यालय-पुस्तकालय के अंदर ब्रेल में उपलब्ध समस्त पुस्तकों को पढ़ने का निश्चय किया। यद्यपि पुस्तकालय में पाठ्य-पुस्तकें कम थीं, परन्तु अन्य पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं। यहीं पर उन्होंने भविष्य में कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय में प्रवक्ता बनने का लक्ष्य भी निर्धारित किया। इसकी प्रेरणा उन्हें विद्यालय के एक अध्यापक श्री सोमनाथ कपूर से मिली, जिन्होंने डॉ. वर्मा को विद्यालय छोड़ने के बाद उच्च शिक्षा के लिये प्रयास हेतु मानसिक रूप से तैयार किया। प्राथमिक शिक्षा पूरी कर वे घर लौट गये क्योंकि विद्यालय में माध्यमिक शिक्षा के लिये व्यवस्था नहीं थी। बिना रुके वेद प्रकाश जी घर पर ही अध्ययन करते रहे तथा उन्होंने गैर-स्कूली छात्र के रूप में सन्तोषजनक अंक लेकर मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इससे उनकी भविष्य की शैक्षिक संभावनाओं का भी पता चल गया।

इसी बीच भारत स्वतंत्र हुआ और देश के विभाजन के फलस्वरूप यह परिवार आगरा, उ. प्र. चला आया। वेद प्रकाश वर्मा ने आगरा में संस्थागत छात्र के रूप में कॉलेज शिक्षा प्राप्त की। कॉलेज स्तर पर उन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए आगरा कॉलेज, आगरा से दर्शन शास्त्र में प्रथम श्रेणी व प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए एम. ए. किया। उल्लेखनीय है कि 1960 में आगरा विश्वविद्यालय, क्षेत्र व संबद्ध कॉलेजों की संख्या की दृष्टि से देश के बहुत बड़े विश्वविद्यालयों में सम्मिलित था। अत: दृष्टि विकलांगता के बावजूद प्रथम स्थान प्राप्त करने का विशेष महत्व है। इससे स्पष्ट हो गया कि दृष्टि बाधा उनके लिए श्रेष्ठता की राह में रोड़ा न बन सकी।

इसके पश्चात जीवन में कॉलेज शिक्षक बनने का उनका अपरिहार्य संघर्ष आरंभ हुआ। कॉलेज प्रवक्ता का विज्ञापन देखते ही वर्मा जी ने उसके लिये प्रार्थना-पत्र भेज दिया। उन्हें विश्वास था कि योग्यता के आधार पर उनका चयन कर लिया जायेगा, परन्तु उन्हें साक्षात्कार के लिये भी नहीं बुलाया गया। कारण--दृष्टि बाधा, जिसका उल्लेख उनके कई दस्तावेजों में था। चयनकर्ताओं ने यही सोचा होगा कि दृष्टि अक्षम व्यक्ति भले ही विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त कर ले, पर वह शिक्षक कैसे बन सकता है, इसके बाद वेद प्रकाश जी ने आगरा के दो कॉलेजों में अस्थायी प्रवक्ता के पद पर काम किया। अस्थायी पद पर होने के कारण, उन्होंने पीएच.डी. करने का निश्चय किया। उन्होंने 1963 में दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग में शोध कार्य आरम्भ किया तथा 1968 में उन्हें पीएच.डी. की उपाधि से सम्मानित किया गया।

निरंतर पारिवारिक सहयोग, वर्षों के कठिन परिश्रम, उद्देश्य की स्पष्टता तथा दृढ़ निश्चय के फलस्वरूप डॉ. वर्मा अंततः 1968 में दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हो गए। उन्होंने अपने व्यापक ज्ञान तथा विद्वता के आधार पर विश्वविद्यालय के हजारों छात्रों को शिक्षित किया। प्रारंभ में दृष्टि-अक्षमता के विषय में नकारात्मक धारणाओं के कारण पदोन्नति में कठिनाई हुई पर वे अपना कार्य निष्ठापूर्वक करते रहे। नवीन दार्शनिक विचारों तथा अवधारणाओं से स्वयं को परिचित रखने के लिये वे पुस्तकों व पत्रिकाओं का निरंतर अध्ययन करते थे। आखिरकार उनकी योग्यता को पहचान मिली और उन्हें रीडर का पद प्राप्त हो गया। तत्पश्चात वे निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे।

क्रमानुसार डॉ. वर्मा को प्रोफेसर के रूप में पदोन्नत किया गया। लगभग 19 महीने तक उन्हें विभागाध्यक्ष का पद सुशोभित करने का गौरव भी प्राप्त हुआ। डॉ. वर्मा बताते हैं कि हालांकि उनकी रुचि शिक्षण, लेखन व शोध में अधिक थी परन्तु तत्कालीन कुलपाति का विचार था कि उन्हें शिक्षित वर्ग के मन में दृष्टिबाधितों के प्रति भ्रांतियों को दूर करने के लिए भी विभागाध्यक्ष का पद स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार डॉ. वर्मा गिने-चुने दृष्टि विकलांग विभागाध्यक्षों की श्रेणी में सम्मिलित हो गये तथा दर्शन शास्त्र विभाग के प्रथम विकलांग विभागाध्यक्ष बने।

डॉ. वर्मा को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पाँच वर्ष के लिये शोध विज्ञानी भी नियुक्त किया गया। वास्तव में यह एक ऐसा सम्मान है जिसके लिये दृष्टिवान बुद्धिजीवी भी तरसते हैं। डॉ. वर्मा ने 1999 में सेवा से अवकाश ग्रहण करने से पूर्व दर्शनिक विचारकों तथा शिक्षकों में अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया। प्रो. अमेरिटस के रूप में कार्य कर उन्होंने गौरव का एक और कीर्तिमान स्थापित किया। सम्प्रति वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक परियोजना पर काम कर रहे हैं जिसका शीर्षक ''अरस्तू के नीति संबंधी दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता'' है।

डॉ. वर्मा ने व्यावसायिक जीवन में उच्च कीर्तिमान स्थापित करने के साथ-साथ सुखद पारिवारिक जीवन भी जिया। उन्होंने जनवरी 1968 में सुश्री कृष्णा कुमारी से विवाह किया, जिन्होंने अपने सतत सहयोग व देखभाल से वर्मा जी के जीवन को सुखद, उद्देश्यपूर्ण तथा जीवंत बनाया। उनका एक पुत्र है।

यद्यपि कृष्णा जी के माता-पिता ने आरम्भ में इस विवाह का घोर विरोध किया, परन्तु कुछ वर्ष बाद उन्होंने तथा अन्य संबंधियों ने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके परिवार ने डॉ. वर्मा को यथोचित सम्मान कभी नहीं दिया।

वर्मा साहब ने 11 पुस्तकें एवं 60 से अधिक शोध-पत्र तथा लेख लिखे हैं। उनकी पुस्तकों का कई बार पुनर्मुद्रण उनकी विद्वता, ज्ञान एवं पुस्तकों की लोकप्रियता



का द्योतक है। उनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं: नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत (1977), डेविड ह्यूम का दर्शन (1978), महात्मा गाँधी का नैतिक दर्शन (1979), लुई ब्रेल - व्यक्तित्व और कृतित्व (1981) तथा धर्म-दर्शन की मूल समस्याएं (1991)।

डॉ. वर्मा की बौद्धिक क्षमताओं को व्यापक सम्मान मिला है तथा उन्हें अनेक संस्थानों द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है। इनमें उ.प्र. हिन्दी संस्थान तथा अखिल भारतीय दर्शन परिषद सम्मिलित हैं। उन्हें राष्ट्रपति का 'सर्वोत्तम विकलांग कर्मचारी पुरस्कार' सन् 1980 तथा ऑल इंडिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड का 'शताब्दी पुरस्कार' सन् 1987 में प्राप्त हुआ। उनके जीवन में एक और महत्वपूर्ण एवं गौरवशाली क्षण वह था जब वर्ष 2005 में उन्हें के. के. बिरला फाउंडेशन द्वारा भारतीय दर्शन, संस्कृति व कला पर प्रकाशित कार्य हेतु 'शंकर पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

उनके जीवन में यद्यपि पुरस्कार तथा व्यावसायिक सफलताओं की भरमार रही है लेकिन कुछ गहन पीड़ादायक क्षण भी आये हैं दुर्भाग्य का एक क्रूर थपेड़ा उन्हें वर्ष 2001 में झेलना पड़ा, जब तीन दशक से अधिक समय तक, सुख, सफलता, सहयोग एवं समर्पण की अनूठी प्रतीक उनकी स्नेहमयी पत्नी कृष्णा जी को काल के निष्ठुर हाथों ने लम्बी अस्वस्थता के बाद उनसे छीन लिया। इसके बावजूद वर्मा जी घनीभूत संताप से साहसपूर्वक उबरकर उपयोगी व अर्थपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। श्रेष्ठता एवं उपलब्धि सम्पन्न ऐसा जीवन अपने आप में न केवल दृष्टिबाधित अपितु सम्पूर्ण समाज के लिये उद्दीप्त प्रेरणास्रोत है। उनका संक्षिप्त एवं सारगर्भित संदेश है, ''समाज में दृष्टिहीन व्यक्तियों के साथ सामान्य व्यवहार किया जाना चाहिये क्योंकि उनकी आवश्यकताएं, इच्छाएं, महत्वाकांक्षाएं, दुर्बलताएं तथा सीमाएं समाज के किसी भी अन्य सदस्य के समान ही होती हैं। हममें से कोई भी पूर्ण नहीं है।''

डॉ. वर्मा का संघर्षमय एवं सफल प्रेरणादायक जीवन, दीर्घकाल तक सभी को मनोबल प्रदान करता रहेगा।

•

# शिरीष देशपांडे

## प्रखर विधिवेत्ता

—मुक्ता अनेजा

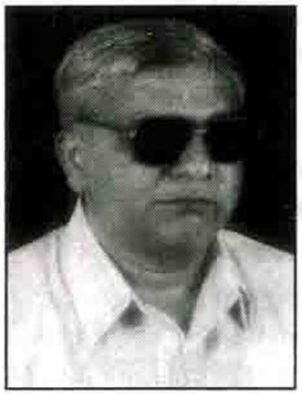

सम्पूर्ण परिवेश प्रसन्नता व आनन्द से सराबोर था। घटना नवम्बर 1964 की है, जब खुशी व उल्लास के त्योहार दीपावली की धूमधाम पूरे उफान पर थी। सावधानी तथा चेतावनी की परवाह किये बगैर बच्चे पटाखे चला रहे थे।

शिरीष नामक एक शरारती बालक भी इनमें शामिल था। वह 'लक्ष्मी बम' नामक पटाखा लेकर आंगन के बीच रख उसे जलाने लगा। नौ वर्षीय बालक ने अपने दोस्तों को 'बम' की गर्जनापूर्ण ध्वनि के रोमांच हेतु उसे जलाकर टिन के डिब्बे से ढकते हुये देखा था । अत: रोमांचक अनुभव के लिये वह भी उस प्रक्रिया को दोहराना चाहता था। उसने बम को माचिस से जलाकर टिन से ढका, थोड़ी प्रतीक्षा की, परन्तु कोई आवाज नहीं आयी। टिन हटाकर देखा तो पलीता बुझ चुका था। एक बार पुन: वही प्रक्रिया दोहरायी, परन्तु असफलता ही मिली। यह तो बहुत निराशाजनक अनुभव था। जोश में वह एक बार फिर पटाखे के पास पहुँचा और टिन को हटा दिया। तत्काल बम में धमाकेदार विस्फोट हुआ, जिसने एक पल ही में चंचल, प्रसन्न व नटखट बालक के जीवन को तहस-नहस कर दिया।

शिरीष को अंधकार व असहनीय पीड़ा ने घेर लिया, हृदय-विदारक चीत्कार सुनकर उसकी माताजी दौड़ी आयीं। स्थिति समझते ही माता-पिता उसे डॉक्टर के पास ले गये। पटाखा चलाने की उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। उसे भयंकर पीड़ा हो रही थी। एक आँख से धुंधला दिखाई दे रहा था और दूसरी आँख पूरी तरह बेकार हो चुकी थी। रातोंरात उसकी दुनिया ही बदल गयी।



शिरीष को स्कूल छोड़ना पड़ा, परन्तु उसने निजी शिक्षक की सहायता से अध्ययन जारी रखा। दृष्टि-अक्षमता के बाद शिरीष की माताजी उसके लिये शक्ति का अपार स्रोत साबित हुईं। वे उसे कहानियाँ तथा पाठ्य-पुस्तक पढ़ कर सुनाने के अतिरिक्त उसके साथ प्राय: क्रिकेट भी खेलती थीं। अपने बेटे को भली प्रकार सहायता दे पाने की दृष्टि से उन्होंने स्वयं बी.ए. की परीक्षा पास की। अपनी बदली हुई स्थिति से समायोजन के लिये शिरीष को माताजी से भरपूर सहयोग मिला। फलस्वरूप उसने निराशाजनक स्थिति से जूझना तथा विकलांगता की स्वाभाविक सहचरी बाधाओं से सफलतापूर्वक संघर्ष करना सीख लिया।

उसने ब्रेल सीखी और अध्ययन में जुट गया। वह एक के बाद दूसरी परीक्षा में सफलता प्राप्त करता गया। भारतीय राजस्व सेवा के अधिकारी तथा विधि विशेषज्ञ पिता ने बेटे को भी कानून की शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया। अपनी श्रेष्ठता साबित करते हुये शिरीष ने एलएल. एम. की परीक्षा में नागपुर विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये। इस उपलब्धि से प्रभावित होकर एक प्रसिद्ध विधि संकाय सदस्य ने शिरीष को शिक्षण के लिये आमंत्रित किया। वर्ष 1982 में शिरीष देशपांडे ने नागपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विधि शिक्षण विभाग में पढ़ाना प्रारम्भ कर व्यावसायिक सफलता की ओर निर्णायक कदम बढ़ाया। जैसे-जैसे शिरीष देशपांडे की प्रतिभा एवं संचित ज्ञान धारदार बनते गये, वे अपने व्यवसाय में शीघ्र ही प्रतिष्ठित विशेषज्ञ बन गये।

सन् 1987 उनके जीवन का ऐतिहासिक वर्ष है। उस साल उन्हें नागपुर के एक प्रसिद्ध कॉलेज ने भाषण देने के लिये आमंत्रित किया। श्रोताओं में एक प्रतिभाशाली एवं ऊर्जावान महिला भी सम्मिलित थीं। उस कॉलेज में वनस्पति विज्ञान की प्रवक्ता शैला, शिरीष के भाषण से बहुत प्रभावित हुई। दोनों मिले और एक दूसरे को दिल दे बैठे।

अगले वर्ष शिरीष देशपांडे को इंग्लैंड के विदेश एवं राष्ट्रमंडल कार्यालय से शोधवृत्ति प्राप्त हुई। फलस्वरूप उन्हें ऑक्सफोर्ड जाने का अवसर मिला। इसी बीच शैला से उनकी सगाई हो चुकी थी। शैला के माता-पिता देशपांडे की प्रतिभा एवं उपलब्धियों का बड़ा सम्मान करते थे। ऑक्सफोर्ड में अपने एक-वर्षीय प्रवास के दौरान शिरीष जी ने अपने पर्यवेक्षक प्रो. पी. पी. क्रेक से महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया तथा नये मित्रों से लाभदायक वार्तालाप का आनन्द भी उठाया। सन् 1989 में भारत लौटने पर उन्होंने शैला से विवाह कर लिया। इस दम्पत्ति को एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने तेजस रखा। शिरीष देशपांडे के मुताबिक बालक का पालन-पोषण उनके जीवन में सर्वाधिक आनन्द-दायक अनुभवों में से एक है। वे तेजस को अपने लिये ईश्वर द्वारा प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ उपहार मानते हैं।

पत्नी के प्रोत्साहन पर देशपांडे जी ने कानून में पीएच. डी. के लिये अध्ययन

किया तथा उपाधि प्राप्त की। सामाजिक क्षेत्र में भी अब उन्होंने उत्तरदायित्व सम्भालना आरम्भ कर दिया तथा ख्याति अर्जित की। वह राष्ट्रीय दृष्टिहीन संघ के अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय दृष्टिहीनार्थ एसोसिएशन की कार्यकारिणी के सदस्य बने।

उन्होंने वर्ष 1989 में राज्य दृष्टिहीन कल्याण पुरस्कार प्राप्त किया। शिरीष जी विकलांगों एवं पिछड़े व्यक्तियों से सम्बद्ध विषयों में अधिकाधिक रुचि लेने लगे। एक दृष्टिहीनार्थ आवासीय विद्यालय तथा पुस्तकालय के संस्थापक सदस्य बनने के साथ-साथ वे मानवाधिकार सम्बन्धी विषयों में भी रुचि लेने लगे।

डॉ. देशपांडे ने अपने चयनित व्यवसाय में नवीनतम जानकारी रखने के लिये सम्मेलनों में भागीदारी तथा लेख प्रकाशन का अच्छा उपयोग किया है। अब वे अपने भूतकाल को गर्व, विजय एवं तृप्ति भाव से देखने की स्थिति में पहुँच चुके हैं।

डॉ. देशपांडे समाज को उपयोगी योगदान दे रहे हैं। वे स्वयं व अपने परिवेश के मध्य समरसता स्थापित कर सुखद जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे बलपूर्वक कहते हैं, '' मेरी दृष्टि-क्षति कभी भी मेरी विनोद-प्रियता तथा जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के बीच में नहीं आयी।''

•



# शिवाजी लक्ष्मण च्वहाण

## मनोवांछित व्यवसाय में व्यस्त

—प्रिया वर्धन

बारह जुलाई, 1951 को सांगली, महाराष्ट्र में जन्मे शिवाजी लक्ष्मण च्वहाण की दृष्टि चार वर्ष की आयु में किए गए मोतियाबिंद के ऑपरेशन के फलस्वरूप जाती रही। उनके माता-पिता अशिक्षित परन्तु आर्थिक रूप से सम्पन्न थे। वे फलों का व्यापार करते थे। उन्होंने बालक की दृष्टि पाने के लिए अनेक ऑपरेशन करवाये, परन्तु ऐसा हो नहीं पाया। जानकारी के अभाव में तथा असुरक्षा की भावना के कारण शिवाजी की शिक्षा 10 वर्ष की आयु तक आरम्भ नहीं हो पाई। एक समझदार पड़ोसी के समझाने तथा आशंकाओं का समाधान करने के पश्चात ही शिवाजी का परिवार उसे एक दृष्टिबाधितार्थ विद्यालय में प्रवेश दिलवाने के लिए तैयार हो पाया।

शिवाजी के माता-पिता उसे कहीं भी अकेला न भेजकर उसके साथ आते-जाते थे। तीन वर्ष के बाद ही उन्हें विश्वास हो सका कि उनका बेटा वास्तव में स्वतन्त्र रूप से यात्रा कर सकता है।

शिवाजी का बचपन शरारत भरा था जिसके कारण उन्हें तीन बार स्कूल से निकाला गया परन्तु हर बार उनकी माँ की प्रार्थना पर उन्हें पुन: रख लिया जाता। वे सरसरे तौर पर कहते हैं, ''मेरी यही समस्या थी और इसी तरह इसका समाधान होता रहा।'' तेज स्मरण शक्ति, एकाग्रता तथा उत्तम ब्रेल कौशल के फलस्वरूप वे स्कूल व कॉलेज परीक्षाओं में प्रशंसनीय अंक प्राप्त करने में सफल रहे। अपने अध्ययन के साथ-साथ उन्होंने टेलीफोन तथा व्यावसायिक पुनर्वास पाठ्यक्रम भी सफलतापूर्वक पूरे किए।

पिता की मृत्यु के पश्चात वे भरण-पोषण के लिए अपने भाई-बहनों पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। वे अपनी आजीविका स्वयं कमाने के लिए उत्सुक थे परन्तु नौकरी मिलना आसान नहीं था।

अत: आत्मनिर्भरता के लिए उन्होंने आरम्भिक प्रयास शुरू कर दिए। शिवाजी ने लॉटरी टिकट बेचने से लेकर फल, नाई और दर्जी की दुकान तक चलाने की कोशिश की, लेकिन किसी से भी उन्हें लाभ नहीं हुआ।

इसी बीच उनकी भेंट स्मिता से हुई जिससे वे विवाह करना चाहते थे, परन्तु उनके परिवार को स्मिता की दृष्टिहीनता के कारण यह संबंध स्वीकार्य नहीं था। वे शिवाजी का विवाह किसी दृष्टिवती लड़की से करना चाहते थे। आपत्ति एवं विरोध के बावजूद शिवाजी ने स्मिता से विवाह कर लिया। आज दोनों के परिवार इस निर्णय से प्रसन्न हैं।

वर्ष 1979 में वह चिर-प्रतीक्षित क्षण आया और उन्हें इण्डियन ओवरसीज बैंक में टेलीफोन ऑपरेटर के साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। वे इसमें सफल रहे तथा उन्होंने कालबादेवी, मुम्बई शाखा में नौकरी शुरू कर दी।

परन्तु उनका मन व्यापार की ओर ही आकर्षित रहा। उन्हें लगता था कि इस बार प्रयास करने पर उन्हें सफलता अवश्य मिलेगी। 1987 में उन्होंने स्मित इण्डियन ट्रेवल्स की स्थापना की। इससे उन्हें लाभ व समृद्धि मिली, जिसकी तलाश में वे लम्बे समय से भटक रहे थे।

व्यापार के प्रारम्भिक वर्षों में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बैंक में नौकरी के कारण वे व्यापार को सीमित समय दे पाते थे, उनके हिस्सेदार ने व्यापार हड़पने की कोशिश की तथा कुछ ग्राहक भी उन्हें धोखा दे जाते थे। अनेक व्यक्तियों को दृष्टिबाधा के कारण उनकी योग्यता पर भी कम विश्वास था। साथ ही कई वर्षों तक उन्होंने केवल बुकिंग एजेन्ट के तौर पर ही काम किया।

शिवाजी च्वहाण आशावादी होने के कारण कठोर परिश्रम करते रहे। वास्तव में वे लोगों से सम्पर्क बनाने में लगे रहे, जैसा कि उनका विश्वास है जीवन अथवा व्यापार में यही सफलता की कुंजी है, वे दार्शनिक अन्दाज में कहते हैं, ''व्यापार में सब कुछ विश्वास पर निर्भर करता है। धोखेबाजों ने विश्वास तोड़ा--मुझे लगता है कि इसमें दृष्टिहीनता की कोई भूमिका नहीं है।''

1992 में खुराना ट्रेवल्स के रूप में सफलता उन तक पहुँच ही गयी। खुराना ट्रेवल्स के श्री खुराना ने शिवाजी च्वहाण के व्यापार का गहन अध्ययन किया तथा उनके जनसम्पर्क कौशल, कर्मचारी प्रबन्धन एवं अकाउन्टस के रखरखाव से वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने साथ मिलकर व्यापार करने का निर्णय लिया। श्री शिवाजी



च्वहाण की विकलांगता उनके व्यापार सम्बन्धों के कभी आड़े नहीं आई।

लक्जरी कोचेज तथा बसें चलाकर उन्होंने अपने व्यापार का विस्तार किया। इस तरह विश्वास एवं व्यापार की एक लम्बी पारी की शुरुआत हुई। तब से व्यापार, आय तथा ग्राहकों में लगातार वृद्धि हो रही है। 1995 में उन्होंने अपनी बैंक की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

आजकल उनकी कुल वार्षिक आय लगभग 30 से 40 लाख रुपये है। उनके पास छह स्थायी तथा काम को देखते हुए कुछ अस्थायी कर्मचारी रहते हैं। अब उनका बेटा भी व्यापार में सहयोग देता है।

इतने ऊँचे बिन्दु पर पहुँचकर भी शिवाजी च्वहाण श्री खुराना के प्रति बहुत कृतज्ञ हैं। वे कहते हैं, ''मैं आज जिस स्थिति में हूँ वह सब श्री खुराना की बदौलत है।'' वे ग्राहकों को प्रभावित करने वाली अपनी व्यापार विशेषज्ञता के बारे में कहते हैं, ''यह सब कुछ तो मेरे मस्तिष्क में है। ग्राहकों को कैसे संभाला जाये, हिसाब-किताब का ध्यान रखने तथा किस व्यक्ति को काम पर रखा जाए इत्यादि के निर्णय में मेरी एकाग्रता की बड़ी भूमिका है।'' अपने कर्मचारियों तथा ग्राहकों को नियन्त्रित रखने के लिए वे अन्य तकनीकों के साथ-साथ, अलग-अलग तरह के प्रश्नों का सहारा लेते हैं। व्यापार में अंतिम निर्णय उन्हीं का होता है।

श्री शिवाजी लक्ष्मण च्वहाण देश में व्याप्त विकलांगों की दुर्दशा के विषय में भी चिंतित व संवेदनशील हैं। विकलांगों की वर्तमान दशा के बारे में उनका विचार है, ''मेरा ख्याल है कि निजी क्षेत्र अधिक संवेदनशील है। दृष्टिबाधितों के बारे में सरकारी नीतियाँ फाइलों तक सीमित रह जाती हैं। उन्हें हमारे प्रयत्नों में सहयोग देने के लिए हम तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए।''

यद्यपि अधिकतर समय वे अपने व्यापार में व्यस्त रहते हैं, परन्तु जो कुछ थोड़ा बहुत समय उन्हें मिलता है उसमें वे अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ रहना पसन्द करते हैं। कविताएं लिखने में भी उनकी रुचि है।

उम्मीद का दामन छोड़े बगैर श्री शिवाजी लक्ष्मण च्वहाण अपनी सर्वोत्तम आंतरिक शक्तियों का प्रयोग करने तथा समस्त बाधाओं को परास्त करने में सफल रहे हैं। वे सदैव व्यापारी बनना चाहते थे और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

•

# शिवजतन ठाकुर

## प्रबल पुरोधा

—मुक्ता अनेजा

शिवजतन ठाकुर का जीवन इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है कि विकलांगता उच्च पद प्राप्त करने में बाधक नहीं होती। उन्होंने दृष्टिबाधितों के प्रति हर तरह के अन्याय तथा भेदभावपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध सतत संघर्ष करने वाले व्यक्ति के रूप में ख्याति अर्जित की है। अत्यधिक सामान्य पारिवारिक पृष्ठभूमि के बावजूद वे भारत की एक प्रमुख संवैधानिक संस्था के सदस्य होने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

बिहार के जिला नालंदा में जून, 1953 में जन्मे बालक शिवजतन 8 वर्ष की आयु में मस्तिष्क ज्वर के कारण दृष्टिबाधित हो गए थे। उनके पिता चतुर्थ श्रेणी के एक साधारण रेलवे कर्मचारी थे। यद्यपि उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी परन्तु उनके माता-पिता का व्यवहार उनके प्रति निश्चित रूप से सकारात्मक था। बालक शिव के पिता ने न केवल उन्हें अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया बल्कि यथासम्भव आर्थिक सहयोग भी दिया। उन्होंने 8 वर्ष की आयु में एक दृष्टिबाधितार्थ विद्यालय में अध्ययन आरम्भ किया तथा समस्त बाधाओं को परास्त करते हुए सफलता की ओर बढ़ने का दृढ़ संकल्प भी प्रदर्शित किया।

वे पढ़ने-लिखने में कुशाग्र बुद्धि छात्र थे। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने बी. ए. अंग्रेजी ऑनर्स की उपधि प्राप्त की। वे न केवल एक अध्यवसायी विद्यार्थी थे, अपितु अविरल वाचक तथा प्रखर वक्ता भी थे। विश्वविद्यालय स्तर पर वे एक प्रखर वक्ता के रूप में उभरे। छात्र जीवन में ही उन्होंने बिहार में नेतृत्व की



क्षमता विकसित और प्रदर्शित की। परिणामस्वरूप उन्हें पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ का सचिव चुन लिया गया। शिवजतन ठाकुर ने एम. ए. अंग्रेजी में प्रथम स्थान प्राप्त किया। प्रतिभाशाली पृष्ठभूमि का छात्र होने के कारण उन्हें एम. ए. करने के छह माह में ही प्रवक्ता के रूप में नौकरी प्राप्त हो गई।

वे अध्यवसाय एवं उत्साह के साथ सफलता के नवीन लक्ष्यों की ओर बढ़ते रहे। उन्होंने बी. एड. एवं पीएच.डी. भी की। आज प्रोफेसर के रूप में उनका बहुत सम्मान किया जाता है।

मार्च, 1991 में उन्हें बिहार लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त किया गया। इस प्रकार किसी दृष्टिबाधित को एक संवैधानिक पद पर कार्य करने का अनूठा अवसर प्राप्त हुआ। उनकी प्रशासनिक गतिविधियों का राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में बहुत प्रभाव पड़ा। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि दिनांक 22 ऑक्टूबर, 1991 के एक प्रस्ताव में उन्हें भारत सरकार के 'पद्मश्री' सम्मान के लिए नामित किया गया, परन्तु न्याय पालिका द्वारा 3 वर्ष तक इन सम्मानों पर लगाए गए प्रतिबन्ध के फलस्वरूप उनके नाम पर विचार नहीं हो सका।

कुछ कारणों से बाद में चलकर उनकी नियुक्ति विवाद का विषय भी बनी। उनके समक्ष कई कठिनाइयां भी आईं। डॉ. शिवजतन ठाकुर सरकार व राजनीतिज्ञों की धौंस में आने वाले व्यक्ति नहीं थे। परिणामस्वरूप उनकी विकलांगता के आधार पर उनकी नियुक्ति को चुनौती देने के लिए पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की गई। संविधान की धारा--317 के अंश 'शारीरिक एवं मानसिक निःशक्तता के कारण' के आधार पर डा. ठाकुर की नियुक्ति को निरस्त करने की प्रार्थना की गई।

डॉ. ठाकुर ऐसे भेदभावपूर्ण व्यवहार को चुपचाप कैसे सहन कर सकते थे? उन्होंने दृढ़तापूर्वक इसका विरोध किया। उच्च न्यायालय में स्वयं बहस की तथा विजय प्राप्त की। परन्तु कहानी यहीं खत्म नहीं हुई। फैसले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। बिहार सरकार उन्हें विकलांगता के आधार पर आयोग्य ठहराने की मांग पर अड़ी रही। डॉ. शिवजतन ठाकुर ने वहाँ भी सुनवाई के दौरान स्वयं बहस की तथा संविधान की उपयुक्त धाराओं से उद्धरण देकर अपने तर्कों को पुष्ट किया, जिससे सभी लोग बहुत प्रभावित हुए। उच्चतम न्यायालय ने यह कहते हुए उनकी प्रशंसा की कि "हमने इस न्यायालय में प्रतिवादी नं. 6 को देखा, जिन्होंने स्वयं केस पर बहस की। हम कुछ क्षण पश्चात ही समझ पाए कि वे पूर्ण दृष्टिहीन हैं। वास्तव में हमने उन्हें बहुत योग्य व्यक्ति पाया, जिससे हम बहुत प्रभावित हुए हैं।"

डॉ. ठाकुर ने केस जीता और कुछ समय के लिए 'बिहार लोक सेवा आयोग' के अध्यक्ष भी रहे। उन्हें अपनी बहुमुखी सफलता से सार्वजनिक प्रतिष्ठा प्राप्त होने के

साथ-साथ निजी जीवन में भी प्रसन्नता मिली। उनके सशक्त व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक उपलब्धियों से प्रभावित होकर उनकी एक छात्रा ने उनसे विवाह कर लिया। उनकी पत्नी एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापिका हैं। उनके दो बच्चे हैं।

डॉ. ठाकुर अपने क्षेत्र में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से सक्रिय रहे हैं। अच्छे अध्यापक व शोधकर्ता के साथ-साथ उन्होंने लेखन कार्य भी किया। उन्होंने 'माइन्ड एण्ड हर्ट ऑफ हेलन केलर' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है। राष्ट्रीय समाचार पत्रों के लिए भी उन्होंने कई शोध लेख लिखे हैं। वे 'साइबर लिट्रेचर' के सहायक सम्पादक भी हैं। अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग से साहित्य एवं भाषा-विज्ञान में उनकी रुचि व ज्ञान में और अधिक वृद्धि होती रही है। वे अमेरिकन स्टडीज रिसर्च सैंटर, इण्डियन एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन स्टडीज तथा इन्टरनेशनल सोसायटी फॉर लिंग्विस्टिक के आजीवन सदस्य हैं। वे विदेश यात्रा भी कर चुके हैं।

अपनी उपलब्धियों के फलस्वरूप उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। सन् 1992 में उन्हें उत्कृष्ट विकलांग कर्मचारी का अवार्ड प्राप्त हुआ। अमेरिकन बॉयोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा उन्हें 'मैन ऑफ डिस्टिन्कशन' घोषित किया गया तथा लन्दन के इन्टरनेशनल बायोग्राफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा 'मैन ऑफ द ईयर'। उल्लेखनीय कार्य के लिए उन्हें ह्यूमन वेलफेयर सोसायटी से भी प्रशंसा प्राप्त हुई है।

उनका विश्वास है कि उनकी सफलताओं का रहस्य अध्यवसाय, विश्वास एवं बाधाओं से सतत संघर्ष है। उनका जीवन उन सभी व्यक्तियों के लिए प्रेरणादायक है जो चुनौतीपूर्ण परिवेश पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। उन्होंने अपने जीवन में दृढ़ इच्छा-शक्ति, नम्रता एवं साहस का परिचय दिया है।

•



# एस. तरसेम

## एक सृजनात्मक लेखक

—मुक्ता अनेजा

उन्होंने 10 वर्ष की आयु में ही काव्य सृजन आरम्भ कर दिया था। जीवन के उतार-चढ़ाव तथा बारह वर्ष की आयु में दृष्टि-विकलांगता की शुरुआत से बेपरवाह रहते हुए उन्होंने सोलह वर्ष की आयु में आजीविका कमानी आरम्भ कर दी थी। अथक लेखक व अनेक पुरस्कार प्राप्त श्री तरसेम ने दुनिया को यह दिखा दिया कि किस प्रकार "आप अपने लक्ष्य का निर्धारण करें तथा आगे बढ़ें। समस्याएं आती हैं तो आएं, उनका डटकर सामना करें।"

एस. तरसेम का जन्म दिसम्बर, 1942 में जिला संगरूर, पंजाब के तपा नामक स्थान पर एक मध्यमवर्गीय व्यापारिक परिवार में हुआ। उन्हें या उनके परिवार को भविष्य में दृष्टि-बाधा के रूप में आने वाली विपत्ति का आभास नहीं था। वैसे दृष्टि-क्षति आरम्भ होने से पूर्व भी उनका जीवन सुखद नहीं था। पाँच वर्ष की आयु में उनके पिता चल बसे। परिणामस्वरूप आठ लोगों के परिवार के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व उनके बड़े भाई, हरबंसलाल, के कंधों पर आ पड़ा, जिनका अपना वेतन भी कम ही था। हाँ, इस अन्धकार में उनकी माँ का स्नेह और प्रोत्साहन आशा की किरण का काम कर रहा था।

तरसेम ने सात वर्ष की आयु में स्कूल जाना आरम्भ किया तथा अपने भाई की सहायता से सातवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की। आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ने के कारण उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ा । बाद में अपनी मेहनत के बल पर उन्होंने बी. एड. के अतिरिक्त सारी शिक्षा प्राइवेट छात्र के रूप में ग्रहण की। 12 वर्ष की उम्र में क्षीण

होती दृष्टि ने उन्हें तथा उनके परिवार को भारी आघात पहुँचाया। बाद में पता चला कि दृष्टि-क्षति का कारण दृष्टि पटल शोथ (Retinitis Pigmentosa) था जिसके फलस्वरूप कुछ दिन बाद तरसेम को रात्रि दृष्टि-अक्षमता का सामना करना पड़ा।

एक ओर क्षीण होती दृष्टि तथा दूसरी ओर आर्थिक कठिनाइयों के परिणामस्वरूप तरसेम ने सोलह वर्ष की किशोरावस्था से ही एक निजी विद्यालय में शिक्षण कार्य आरम्भ कर दिया जिससे उनकी जीवटता की झलक मिलती है। दिनभर में शिक्षण तथा ट्यूशन करने के पश्चात उन्हें अध्ययन के लिए बहुत सीमित समय मिल पाता था, परन्तु इन विकट परिस्थितियों में भी वे मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। उन्होंने पंजाबी ऑनर्स की परीक्षा पंजाब विश्वविद्यालय में तीसरा स्थान लेकर उत्तीर्ण की।

छोटी आयु से ही तरसेम प्रगतिशील विचारों के थे। फलत: उन्होंने आम जनता, श्रमजीवी वर्ग तथा दृष्टि-अक्षम व्यक्तियों के अधिकारों के लिए संघर्ष आरम्भ कर दिया। वे बुद्धिजीवियों के भी घोर पक्षधर रहे हैं। ऐसे सुधारवादी सामाजिक विचारों के परिणामस्वरूप उनकी पुलिस के साथ झड़पें भी हुईं और गिरफ्तारी भी देनी पड़ी। फिर भी वे अपनी मान्यताओं के प्रति समर्पित रहे।

तीस वर्ष की आयु में वे पूर्ण रूप से दृष्टिहीन हो गए। इसके बावजूद उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं, उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा श्रेष्ठ शिक्षण के लिए यथोचित सम्मान प्राप्त किया। उन्होंने एम. ए. (पंजाबी व हिन्दी) में द्वितीय स्थान तथा एम. ए. (उर्दू) में पंजाब विश्वविद्यालय, पटियाला में प्रथम स्थान प्राप्त किया। श्री तरसेम ने पंजाबी में पीएच.डी. की, जो अध्ययन तथा शिक्षण में उनके अदम्य उत्साह का प्रतीक है।

डॉ. तरसेम अपनी साहित्यिक क्षमता के लिए विख्यात हैं। उन्होंने अब तक चौबीस पुस्तकें लिखीं हैं, जिनमें लघुकथा, कविता एवं गजल संग्रह सम्मिलित हैं। उनकी अपनी विशिष्ट लेखन शैली है जिसमें उन्होंने जीवन-वृतांत, आत्मकथा तथा आधुनिक पंजाबी साहित्य सम्बन्धी शोध-लेख लिखे हैं। उनकी रचनाओं में शांति तथा साम्प्रदायिक सद्भाव, प्रेम और एकता, सामाजिक अन्याय तथा वर्ग-संघर्ष के विषय छाए हुए हैं। उनकी कुछ प्रमुख पुस्तकें ये हैं---

| | |
|---|---|
| 1. आज दे मसीहे | पंजाबी लघुकथा संग्रह, 1978 |
| 2. कच्ची मिट्टी पक्के रंग | आत्मकथा, 1989 |
| 3. ढाई आखर | गजल संग्रह, 1999 |
| 4. रिश्ते | हिन्दी लघुकथा संग्रह, 2004 |

पंजाबी साहित्य में डॉ. तरसेम के महत्व को इस तथ्य से सुगमतापूर्वक समझा



जा सकता है कि उत्तर भारत के तीन विश्वविद्यालयों में छात्रों ने एम. फिल. उपाधि के लिए उनके साहित्यिक योगदान पर शोध किया है। वर्तमान में दो शोधार्थी डॉ. तरसेम के कथा साहित्य तथा काव्य पर शोधकार्य कर रहे हैं।

सन् 1981 में एक सरकारी कॉलेज में प्रवक्ता का पद प्राप्त करने से पूर्व वे विद्यालय स्तर पर शिक्षण करते थे। प्रसन्नता का विषय यह है कि वे स्कूल एवं कॉलेज दोनों ही स्तर पर लोकप्रिय व सफल रहे। वे जीवन भर पंजाबी साहित्यिक परिदृश्य में सक्रिय भूमिका निभाते आए हैं। लेखन के साथ-साथ उन्होंने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया है।

डॉ. एस. तरसेम न केवल सृजनात्मक लेखक, प्रगतिशील नेता और शिक्षक रहे हैं अपितु उनका पारिवारिक जीवन भी सुखद रहा है। 1966 में उन्होंने सुदर्शन देवी से विवाह किया इस दम्पत्ति को दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। दुर्भाग्यवश 1998 में उनकी पत्नी का 48 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया।

डॉ. तरसेम अविरल रूप से साहित्य सेवा तथा महत्वपूर्ण समाज कल्याण कार्य के लिए 35 पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। उनमें से प्रमुख हैं- पंजाबी साहित समिख्या बोर्ड, जालंधर सम्मान 1982, साहित्यिक समालोचना हेतु पंजाब साहित ट्रस्ट, ढूढ़ी का सम्मान 1990, पंजाब सरकार के भाषा विभाग द्वारा उनकी पुस्तक 'ढाई आखर' के लिए ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफर कविता सम्मान 1999, पंजाब सरकार द्वारा शिरोमनि साहितकार सम्मान 2000, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद द्वारा विद्यावाचस्पति सम्मान 2002, पंजाब सरकार द्वारा समाज कल्याण सम्मान 1995 तथा ए. आई. सी. बी. (AICB) द्वारा सहस्त्राब्दि सम्मान 2000।

पंजाबी साहित्य में डॉ. तरसेम की रुचि तथा उस पर प्रभाव इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि वे जुलाई, 1983 से फरवरी, 2004 तक केन्द्री पंजाबी लेखक सभा के उपाध्यक्ष, महासचिव तथा अध्यक्ष रहे। यह संस्था 2000 से अधिक पंजाबी लेखकों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। वे जनवरी, 1994 से पंजाबी साहित कला परिषद के महासचिव भी हैं। पंजाबी की साप्ताहिक पत्रिका 'नजरिया' का सम्पादक होने का गौरव भी डॉ. तरसेम को प्राप्त है। वे सन् 2002 में रीडर का वेतनमान लेते हुए वरिष्ठ प्रवक्ता के पद से सेवानिवृत्त हो चुके हैं।

डॉ. तरसेम की सफलता के पीछे उनका अनवरत परिश्रम, ईमानदारी तथा समाज के लिए सकारात्मक योगदान की भावना है। उनका यह कथन उचित ही है- "तुम जो हँसोगे तो हँसेगी यह दुनिया, अगर गेने लगोगे तो न साथ कोई देगा।"

•

# साधन गुप्ता
## छह दशकों से ख्याति के शिखर पर

—मुक्ता अनेजा

प्रसिद्ध बैरिस्टर तथा राजनीतिज्ञ साधन गुप्ता का नाम पिछले छह दशक से सफलता का पर्याय बना हुआ है। उनका जीवन इस वास्तविकता का प्रभावशाली प्रमाण है कि उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर विकलांग व्यक्ति कितनी तरक्की कर सकता है तथा समाज को कितना योगदान दे सकता है।

साधन गुप्ता का जन्म 7 नवम्बर 1917 को ढाका, बंगलादेश में हुआ था। 16 माह की अल्प आयु में ही चेचक के कारण उनकी दृष्टि जाती रही। सौभाग्यवश उनके माता-पिता ने उनकी अच्छी देखभाल की व पर्याप्त सहयोग दिया। उन्होंने बालक की दृष्टि की पुन: प्राप्ति के लिये भरसक प्रयास किये। भारत में निराशा हाथ लगने पर वे 1931 में आँखों के इलाज के लिये साधन गुप्ता को यूरोप के कई देशों में भी ले गये, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। इलाज के साथ-साथ परिवार ने साधन की शिक्षा पर सदैव समुचित ध्यान दिया। उन्हें कलकत्ता दृष्टिहीनार्थ विद्यालय में नौ वर्ष की आयु में भर्ती करवाया। साधन गुप्ता की शिक्षा पर उपयुक्त ध्यान देने हेतु उनकी स्नेहमयी माँ ने ब्रेल भी सीखी। साधन ने दृष्टि बाधा की चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना किया तथा वे होनहार छात्र सिद्ध हुए। 1936 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की इंटर की परीक्षा में उनका दसवाँ स्थान था। उन्होंने बी. ए. (अर्थशास्त्र ऑनर्स) की परीक्षा कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसिडेन्सी कॉलेज से उत्तीर्ण की। पाठ्यक्रमेतर गतिविधियों में वे बढ़-चढ़ कर भाग लिया करते थे। अन्तर-विश्वविद्यालय वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में सफलता उनकी श्रेष्ठ वक्तृता को सिद्ध करती है। वे छात्र आन्दोलन



में भी सक्रिय थे तथा सन् 1941-44 के बीच बंगाल प्रदेश छात्र संघ के अध्यक्ष रहे। इस प्रकार उनकी दो विशेषताएं उजागर होने लगीं--कौशल तथा नेतृत्व क्षमता। ये दोनों विशेषताएं भविष्य में उनके व्यावसायिक तथा राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं।

साधन गुप्ता ने अपने पैतृक व्यवसाय को ही चुना। उनके पिता स्व. जे. सी. गुप्ता कलकत्ता के अग्रणी वकील थे। इतना ही नहीं पितामह तथा पितामह के चाचा भी अपने समय के अच्छे वकील थे। परिणामस्वरूप 1940 में अर्थशास्त्र से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात उन्होंने विश्वविद्यालय विधि कॉलेज से प्रथम श्रेणी में विधि स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय में सितंबर 1942 से वकालत आरंभ की। बार परीक्षा पूर्ण करने के उद्देश्य से वे 1946-47 में इंग्लैंड, फ्रांस व स्विटजरलैंड भी गये। औपचारिक रूप से यह प्रक्रिया 1947 में लंदन में सम्पन्न हुई। इसमें उनके पिताजी का अभूतपूर्व योगदान था लेकिन साधन गुप्ता की प्रतिभा स्वयं परिष्कृत हुई और कानूनी क्षेत्र में उन्होंने अच्छा नाम कमाया। वकालत शुरू करने के कुछ समय पश्चात ही साधन गुप्ता अपने पिताजी के साथ भारत प्रतिरक्षा अधिनियम (Defence of India Act)के अंतर्गत बंदी बनाये गये राजनैतिक नेताओं के एक मुकदमे में पेश हुये। अपनी योग्यता साबित करने का यह उनके लिए एक स्वर्णिम अवसर था। यशस्वी पिता के युवा पुत्र का अपनी स्वाभाविक विशेषता को सिद्ध करना चुनौतीपूर्ण अनुभव होता है परन्तु साधन गुप्ता ने यह कर दिखाया। जे. सी. गुप्ता ने अपने पुत्र से एक विशेष बिन्दु पर बहस करने के लिए कहा। साधन ने इस बिन्दु पर इतने आत्मविश्वास के साथ बहस की कि न्यायाधीश भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके। इसी मुकदमे में उन्हें संघीय न्यायालय (Federal Court) में भी बहस का अवसर मिला। उनकी सशक्त दलीलों ने महात्मा गाँधी का ध्यान आकर्षित किया तथा उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की। साधन गुप्ता के विवाह के अवसर पर उनके पिता को भेजे पत्र में गाँधी जी ने लिखा:

प्रिय गुप्ता,

महीनों पहले जब मैंने अखबारों में एक दृष्टिहीन वकील को संघीय न्यायालय के समक्ष एक मुकदमे के लिये प्रभावपूर्ण बहस करने के विषय पर पढ़ा तो मुझे ज्ञात नहीं था कि तुम्हें उस वकील के पिता होने का गौरव प्राप्त है। प्रभु कृपा से यह विवाह उसके तथा उसकी भावी पत्नी के लिये शुभ हो। मैं इस चयन के लिये उसे बधाई देता हूँ।

तुम्हारा विश्वासपात्र

एम. के. गाँधी

साधन जी का विवाह सन्1944 में हुआ। मंजरी के रूप में उन्हें एक आदर्श

जीवनसाथी मिलीं, जिसने उनकी व्यावसायिक सफलताओं के साथ-साथ वैयक्तिक सुख-दु:ख में भी उनका साथ दिया। वह स्वयं भी वकील हैं। इस दम्पत्ति की चार बेटियाँ तथा एक बेटा है। वे सब प्रसन्नतापूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

इस समय गुप्ता जी कलकत्ता उच्च न्यायालय के वरिष्ठतम तथा उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ वकील हैं। सन् 1978 में उन्हें पश्चिमी बंगाल का अतिरिक्त महाधिवक्ता तथा वर्ष 1986-87 में महाधिवक्ता बनाया गया। इस उच्च पद को सुशोभित करने वाले वे भारत के प्रथम दृष्टि विकलांग व्यक्ति हैं जिससे उनकी प्रखर बुद्धि एवं ऊर्जा की जानकारी प्राप्त होती है।

श्री गुप्ता कानूनी क्षेत्र में ही अपनी प्रगति से सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने अपने पिता का अनुसरण किया जो पश्चिम बंगाल कांग्रेस के प्रमुख नेता थे तथा वहीं की विधानसभा के सदस्य थे। साधन गुप्ता ने भी राजनीति में बढ़चढ़ कर भाग लिया। वे राजनीति तथा विधि क्षेत्र, दोनों में सफलता के अनूठे कीर्तिमान स्थापित कर चुके हैं। वे लगभग छह दशकों से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं। सन् 1953 में उन्हें लोकसभा का प्रथम दृष्टिहीन सदस्य चुने जाने का गौरव प्राप्त हुआ। वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संसद सदस्य थे। सन् 1957 में वे पुन: चुने गये। वर्ष 1969 में वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्कसिस्ट की ओर से पश्चिम बंगाल विधान सभा के सदस्य बने।

श्री साधन गुप्ता का ऊर्जावान व्यक्तित्व तथा व्यापक उपलब्धियां सार्थक सामाजिक योगदान की द्योतक हैं।

•



# संजय डांग
## एक नवीन प्रयास

—अंजेला एस. नाथ

संजय डांग दिल्ली के पर्यटन उद्योग में एक जाना-पहचाना व प्रतिष्ठित नाम है। नि:सन्देह वे अपने क्षेत्र में प्रगति का एक रोमांचक एवं लोमहर्षक उदाहरण हैं। 38 वर्षीय अविवाहित संजय डांग ने सौन्दर्यपूर्ण तथा आश्चर्यचकित करने वाले स्थानों की यात्रा पर भेजकर अनेक लोगों के सपने साकार किये हैं, उनके व्यापार को ध्यान में रखते हुए, उनके ग्राहक इस तथ्य को निरर्थक समझते हैं कि यह व्यक्ति दृष्टिबाधित है।

संजय के लिये पर्यटन-व्यापार स्कूली शिक्षा समाप्त करते ही उनका मनपसन्द व्यवसाय बन गया था। उन्होंने बी. ए. करने के बजाय व्यापार प्रबन्धन में डिप्लोमा पाठ्यक्रम करने में अधिक रुचि ली। यद्यपि संजय को दृष्टि-सम्बन्धी समस्या दो वर्ष की आयु में ही आरम्भ हो चुकी थी तथा दृष्टि के लगातार घटने की आशंका थी, परन्तु फिर भी उन्होंने इसे ही अपना व्यवसाय चुना।

उनका जन्म 2 जनवरी, 1967 को लखनऊ में हुआ। डॉक्टर ने बताया कि वे दूर की चीजें न दिखाई देने, अर्थात निकट-दृष्टि रोग से ग्रस्त हैं। उनके दृष्टि-पटल (Retina) के कई असफल आपरेशन किये गये। परिणामस्वरूप 25 वर्ष की आयु तक वे दृष्टिबाधित हो गये।

दृष्टिहीन व्यक्ति के लिये यात्रा-सम्बन्धी व्यापार को अपना व्यवसाय बनाने का निर्णय तथा उसमें व्यावसायिक कीर्तिमान स्थापित करना निश्चित रूप से गैर-

परम्परागत पहल थी परन्तु वे इस पर अडिग रहे। उन्होंने क्षीण से क्षीणतर होती दृष्टि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्त समस्याओं को उपलब्धियों में परिवर्तित कर दिया।

संजय के पिता एक फौजी अधिकारी थे। परिणामस्वरूप उनकी बदली होती रहती थी। इसके कारण संजय को नई-नई जगहों पर जाना पड़ता, नये लोगों से मिलना पड़ता, नये मित्र बनाने पड़ते तथा स्थानीय रीति-रिवाजों को सीखना पड़ता था। सम्भवत: इन्हीं अनुभवों ने उन्हें जीवन को सांस्कृतिक विविधताओं की दृष्टि से देखने और अन्तत: अपना व्यवसाय चुनने के लिए प्रेरित किया होगा।

ज्ञान-प्राप्ति का एक स्रोत जैसे ही पहुँच से बाहर हुआ, उन्होंने इसके लिए दूसरे स्रोत का प्रयोग आरम्भ कर दिया। वे बताते हैं, ''जब मैं स्कूल में था, तो पढ़ने में कोई खास मुश्किल नहीं होती थी, परन्तु जब मेरी दृष्टि कम होने लगी तो मैंने घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने तथा विश्व मामलों में ज्ञानवर्धन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो प्रसारण सुनना आरम्भ कर दिया। साथ ही, न्यून-दृष्टि उपकरणों से भी मुझे बड़ी मदद मिली।''

वे अपने स्कूली जीवन को बड़ा मजेदार बताते हैं। उनकी मान्यता है कि ''सीमित दृष्टि के बावजूद मेरा बचपन पूर्णतया सामान्य और परम्परागत था। अपने छोटे भाई-बहन के साथ पहले मैंने दिल्ली के आर्मी पब्लिक स्कूल और बाद में बरेली तथा देहरादून के केन्द्रीय विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की।''

स्कूल में खेल उनकी पहुँच से बाहर थे। अत: संजय ने अपना ध्यान सांस्कृतिक एवं पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियों पर केन्द्रित किया। उन्होंने नाटक इत्यादि सांस्कृतिक कार्यक्रमों में कई पुरस्कार जीते तथा वे स्कूल की मासिक पत्रिका के लिए भी लगातार अपनी रचनाएं दिया करते थे। समाचार पटल के लिये भी वे बड़ी तत्परता से काम करते थे।

संजय का कहना है, ''यात्रा और पर्यटन में मेरी रुचि रही है तथा भारत और विश्व की विभिन्न संस्कृतियों ने मुझे हमेशा ही लुभाया है।''

डिप्लोमा पाठ्यक्रम समाप्त करने के बाद संजय ने कुछ समय के लिए 'पैन. एम.' कम्पनी के बिक्री ऐजेन्ट के साथ काम किया। अपने परिवार के साथ दिल्ली से नोएडा चले जाने पर उन्होंने तीन सहायकों के साथ छोटी सी ट्रेवल ऐजेन्सी शुरू की। दक्षिणी दिल्ली के एक छोटे से साप्ताहिक पत्र 'नेबरहुड स्टार' में उन्होंने विज्ञापन दिया। एक-एक करके ग्राहक आने लगे। उनके काम की गुणवत्ता ने विज्ञापन से भी अधिक चमत्कार कर दिखाया और इक्का-दुक्का ग्राहक जल्दी ही ग्राहकों की कतार बन गये। इससे उत्साहित होकर संजय डांग ने 'नोयडा बाजार' में विज्ञापन दिया और अपने कार्यालय का विस्तार भी किया। 1990 के आरम्भ में जब



कम्प्यूटरीकृत आरक्षण प्रणाली प्रारम्भ हुई तो श्री डांग ने अधिकतर हवाई कम्पनियों के दफ्तर दिल्ली में होने तथा सुविधा की दृष्टि से अपना दफ्तर भी दिल्ली में बनाने का निश्चय किया। व्यापार विस्तार के लिये उनके माता-पिता ने आर्थिक सहयोग दिया।

श्री डांग बड़ी कृतज्ञतापूर्वक कहते हैं, ''मुझे अपने माता-पिता तथा भाई-बहन से अत्याधिक सहयोग मिला है।''

आज उनके लिए 30-35 कर्मचारियों का दल काम करता है तथा उनका वार्षिक लेन-देन करोड़ों रुपये का है।

दृष्टिबाधा के कारण इस गैर-परम्परागत व्यवसाय में आने वाली कठिनाइयों के सम्बन्ध में पूछने पर वे कहते हैं, ''किसी दूसरे उद्यमी की भांति प्रारम्भिक वर्षों में मेरे समक्ष भी पूंजी, ढांचागत सुविधा, साख जैसी अनेक चुनौतियां थीं। अपने घर में जाने के बाद, आने-जाने की परेशानी के कारण मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी। सम्भवत: यह मेरे लिए स्वयं का व्यापार आरम्भ करने के लिए सुअवसर था।''

अपनी ट्रेवल एजेन्सी, 'लि.ट्रेवल वर्ल्ड' (Le. Travel World) स्थापित करने के एक दशक के भीतर ही उन्हें सिंगापुर एयरलाइन्स, थाई एयरवेज, मलेशियन एयरलाइन्स, के.एल.एम., कुवैत एयरवेज, ब्रिटिश एयरवेज, सरीखी विश्व की प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय हवाई कम्पनियों से प्रशंसा एवं पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

गर्वपूर्वक श्री डांग कहते हैं, ''मेरी कम्पनी ने मुख्य रूप से अपने कर्मचारियों में उत्साहपूर्ण प्रेरणा तथा लक्ष्य-केन्द्रित दृष्टिकोण जागृत करके इस क्षेत्र में थोड़े ही समय में अग्रणी स्थान प्राप्त कर लिया है। यह भी स्मरण रहे कि व्यापार नैतिकता पर आधारित होना चाहिए।''

क्या कभी उनके साथ परिवार में उनकी दृष्टिहीनता को लेकर सन्देह और चिन्ता की स्थिति भी उत्पन्न हुई? इस प्रश्न के उत्तर में श्री डांग विकलांग बालकों के माता-पिता को आशावादी परामर्श देते हुए कहते हैं, ''यह मानव स्वभाव है। अनेक माता-पिता तथा परिवार के सदस्य अपने बालकों की दृष्टिबाधा के कारण अनावश्यक रूप से चिन्तित हो जाते हैं। उन्हें बालकों को ऐसे क्षेत्रों व क्षमताओं की पहचान करानी चाहिए जिनमें उनकी रुचि हो तथा जिनमें वे श्रेष्ठता प्रकट कर सकते हों। उनमें विश्वास उत्पन्न करें तथा उन विशिष्टताओं के विकास हेतु उपयुक्त परिवेश तैयार करें। तब उन्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता।''

श्री संजय डांग अपनी सफलता के रहस्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''पूर्व निर्धारित अथवा पुस्तकों में परिभाषित विकल्पों के अभाव में व्यक्ति गैर-परम्परागत

सम्भावनाओं पर भी विचार करने लगता है।''

अन्य अनेक दृष्टिबाधितों की भांति श्री डांग की भी अद्‌भुत स्मरणशक्ति है। जब वे तुरन्त फोन नम्बर तथा पते बता देते हैं तो उनके अनेक मित्रों तथा सहकर्मियों को सुखद आश्चर्य होता है। वे आवाज पहचानने के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय क्षमता का प्रदर्शन करते हैं जो उनके दृष्टिवान सहकर्मियों को आश्चर्यचकित कर डालता है।

रोजमर्रा के कामकाज के लिए श्री डांग अनेक ध्वनियुक्त उपकरणों का प्रयोग करते हैं, जैसे रिकार्डर, पहले वे ऐसा रिकॉर्डर इस्तेमाल करते थे जो आठ मिनट तक की ध्वनि सामग्री को रिकार्ड कर सके। इस पर वे निर्देश, ग्राहकों के नाम अथवा अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं दर्ज किया करते थे। अब श्री डांग सोनी द्वारा निर्मित आई. सी. डी. डिजिटल रिकॉर्डर का प्रयोग करते हैं जिस पर पन्द्रह घंटे तक की सामग्री रिकार्ड की जा सकती है।

श्री संजय डांग का कथन है ''दूरदर्शिता यही है- समय-समय पर जानकारी प्राप्त करते रहें कि इन उपकरणों के अधिक परिष्कृत मॉडल आये हैं अथवा नहीं, क्योंकि प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है।''

श्री डांग दृष्टिबाधितों के भविष्य के सम्बन्ध में बहुत आशावादी हैं तथा कहते हैं, ''अब मात्र पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है क्योंकि वर्तमान युग नित नये अवसर प्रकट कर रहा है। आपको सर्वोत्तम क्षेत्र पहचानने तथा सर्वश्रेष्ठ बनने की आवश्यकता है।''

•



# सतीश कुमार अमरनाथ

## राही नई राह के

—अंजिल सेनगुप्ता

सितंबर 5, 1998 का दिन, किसी भी सामान्य दिन की तरह समाप्त हो रहा था। मनिपाल अस्पताल, बंगलोर के जीवाणु विज्ञान विभाग में सेवारत डॉ. सतीश अमरनाथ घर लौट रहे थे। नियति के अदृश्य हाथ ने अपने एक क्रूर-कृत्य से उनके जीवन को सदा-सदा के लिये बदल डाला। किसी ने सतीश के चेहरे पर सल्फ्यूरिक तेजाब (Sulphuric Acid) फेंक दिया जिससे वे दृष्टिहीन हो गए।

स्मरण करते हुए डॉ. अमरनाथ कहते हैं, ''अपने चारों ओर घनीभूत अंधेरे से त्रस्त मैं किंकर्तव्यमूढ़ सा अस्पताल में लेटा था, लगा सब कुछ समाप्त हो गया है।'' वे एक सूक्ष्म जीव वैज्ञानिक (Microbiologist) थे और उनके अनुसार दृष्टि इसके लिए अनिवार्य है। ''मैं एक कदम चलने का विचार तक नहीं कर पा रहा था, अपना हाथ आगे बढ़ाने में भी मुझे डर लगता था। मैं चूर-चूर हो चुका था और मुझे लगा कि मेरा जीवन समाप्त हो गया है'', वे याद करते हुए कहते हैं।

डॉ. अमरनाथ अस्पताल के बिस्तर पर लेटे हुए अपनी इस विपदा से संघर्ष कर रहे थे कि उनका परिवार उन्हें देखने आया। यद्यपि उन्होंने हल्की-फुल्की बातचीत करने की कोशिश की परन्तु सतीश जी को याद आता है कि वे इतना टूट गए थे कि उनके लिये बात कर पाना भी कठिन था। ''अकस्मात मेरा हाथ अपनी बेटी के चेहरे पर टकराया जो लगभग 10 वर्ष की थी। उसकी आँखों में आँसू थे। तत्क्षण मुझमें एक अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। मेरा भय तथा संदेह तुरंत हवा हो गए। मैंने दृढ़

निश्चय किया कि अपने परिवार के आँसू पोंछने के लिए मैं हर संभव प्रयत्न करूंगा। मैं नहीं चाहता था कि वह व्यक्ति मेरे जीवन और परिवार की खुशियाँ समाप्त करने में सफल हो जाय जिसने मेरे ऊपर तेजाब फेंका था।''

इस प्रकार डॉ. अमरनाथ ने 43 वर्ष की आयु में अपने स्वप्न तथा कार्य-शैली को पुनर्गठित करने की आवश्यकता अनुभव की। डॉ. अमरनाथ ने जिस अभूतपूर्व सहनशीलता के साथ यह पुनर्गठन किया वह उनकी अपूर्व आत्मशक्ति एवं दृढ़ निश्चय का द्योतक है।

मनिपाल अस्पताल ने भी सतीश जी की भरपूर सहायता की जहाँ वे 1996 से सेवारत थे। उनका चिकित्सा-व्यय वहन करने के अतिरिक्त अस्पताल में उनकी नौकरी भी सुरक्षित रखी गई। उनके सहकर्मियों ने भी भरपूर सहयोग दिया तथा वे जो कुछ करना चाहते थे उसके लिए आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान किया। उन्होंने न केवल सूचनाएं एकत्र कीं अपितु दृष्टिहीन व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इसका भी अभ्यास किया। डॉ. अमरनाथ को अपने कार्यालय में काम की पूरी सुविधा मिली। उनको ऐसा सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध करा दिया गया जिसकी सहायता से वे टाइप कर सकें।

''मेरे सहकर्मी तथा मित्रों ने मुझे अपने परिवेश को समझने तथा उसकी बाधाओं को जानने में सहयोग दिया है। मैंने अपनी क्षमताओं व सीमाओं को समझा। उदाहरणार्थ सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखे किसी भी स्लाइड का चित्र मैं निश्चित रूप से नहीं देख सकता परन्तु चिकित्सकीय परिणाम उपलब्ध होने पर मैं निदान अवश्य कर सकता हूँ। अपने पूर्व अनुभव से भी मुझे बड़ी सहायता मिलती है।''

डॉ. सतीश अमरनाथ का संबंध मध्यम वर्गीय परिवार से है। उनके पिता एक निजी परिवहन कम्पनी में प्रबंधक थे तथा माँ गृहिणी। माता-पिता ने उन्हें चिकित्सा क्षेत्र में अध्ययन के लिये प्रोत्साहित किया। दृष्टिबाधित होने के पूर्व ही उन्होंने चिकित्सा शिक्षा पूर्ण कर ली थी।

वे खुश हैं कि मनिपाल अस्पताल ने उनकी विशिष्ट परिस्थिति को समझा। शुरू में स्पष्ट नहीं था कि वे क्या कुछ कर सकते हैं परन्तु अस्पताल प्रबंधकों ने उन्हें अपनी पहले वाली नौकरी पर आने के लिए कहा। प्रबंधकों द्वारा सहयोगी स्वभाव के सहायक देकर उनकी मदद की गई। इस प्रकार उन्हें अपनी संभावनाएं जानने करने का अवसर मिल गया।

''अस्पताल ने मेरे अतिरिक्त प्रशिक्षण व्यय को भी वहन किया। आंतरिक गुणवत्ता परीक्षक के लिए उन्होंने मुझे आई. एस. ओ.(ISO) तथा एन. ए. बी. एल. (NABL) प्रशिक्षण हेतु सुविधा प्रदान की। इस प्रकार मैं संगठन में अतिरिक्त उत्तरदायित्व वहन कर सका। तत्पश्चात एक सहकर्मी ने मुझे परामर्श कार्य का सुझाव



दिया। वह एक रोगी से मिला जिसे कुछ समय पूर्व ही कैंसर की जानकारी मिली थी। मैंने उसकी सहायता की और फलत: मेरे आत्मविश्वास में वृद्धि हुई । अब मैं एच. आई. वी.(HIV) एड्स (AIDS) तथा यकृत-शोथ के रोगियों को परामर्श देता हूँ।''उनकी दृष्टि-अक्षमता को लेकर रोगियों की प्रतिक्रिया कैसी है?''अधिकतर रोगी मेरी दृष्टिबाधा की ओर ध्यान नहीं देते। वे मेरे द्वारा प्रदत्त सहायता से संतुष्ट हैं। मैं इंटरनेट से सूचनाएं ग्रहण कर रोगियों तक सरल और बोधगम्य रूप में पहुँचाता हूँ, परिणामस्वरूप वे उपयुक्त निर्णय ले पाते हैं।''

यह भी उतना ही सच है कि डॉ. अमरनाथ के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ भी आई हैं। संशयवादियों से भी उनका सामना हुआ है।''मेरा विचार है कि सदैव ऐसे लोग मिलेंगे जो स्वयं को दृष्टिवान होने के कारण श्रेष्ठतर समझते हैं। परन्तु साथ ही मैं सोचता हूँ, 'देखने' के लिए व्यक्ति को न केवल आँखें अपितु अन्तर्दृष्टि तथा अनुभूति की भी आवश्यकता होती है।'' उनके कार्य से सिद्ध हो गया है कि आप यदि ठान लें तो कुछ भी असम्भव नहीं। डॉ. अमरनाथ सक्रिय व्यावसायिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे ऐसे अनेक महत्वपूर्ण पदों पर हैं जो सामान्यत: दृष्टि-विकलांगों की पहुँच से बाहर समझे जाते हैं। वे भारतीय चिकित्सा सूक्ष्म विज्ञान एसोसिएशन, कर्नाटक शाखा के उपाध्यक्ष और अध्यक्ष रह चुके हैं। दृष्टिहीनता के बावजूद उन्होंने दो वर्षों तक संगठन का नेतृत्व किया तथा गोष्ठियों व भाषणों का आयोजन भी किया। सम्प्रति वे सूक्ष्म जीवविज्ञान के परामर्शदाता, आई. एस. ओ. के लिए गुणवत्ता प्रबंधन के प्रतिनिधि, अस्पताल की संक्रमण-नियंत्रण समिति के अध्यक्ष तथा सम्बद्ध स्वास्थ्य विज्ञान में दूरस्थ-शिक्षा के समन्वयक हैं।

डॉ. सतीश अमरनाथ अंग्रेजी, हिन्दी, कन्नड़, तमिल तथा तेलगू भाषाएं जानते हैं। आजकल वे सामुदायिक तथा पारिवारिक समारोहों में सक्रिय भाग लेते हैं। वे प्राय: शहर तथा शहर के बाहर वैज्ञानिक विषयों पर भाषण देने के लिए अकेले यात्रा करते हैं। वे अस्पताल में आयोजित प्रत्येक सामाजिक कार्यक्रम में भाग लेते हैं। उनकी पारिवारिक गतिविधियों में सिनेमा जाना भी शामिल है। उनकी दृष्टिवान पत्नी रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन में चिकित्सक हैं। उनकी 17 वर्षीय बेटी भी डॉक्टर बनना चाहती है तथा उनका 12 वर्षीय बेटा आठवीं कक्षा में है।

पहले की तरह डॉ. अमरनाथ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में वैज्ञानिक लेख लिखते रहते हैं। छह लेख दृष्टिबाधा के पश्चात लिखे गए हैं। वे समाचार-पत्र तथा विज्ञान पत्रिकाओं के लिए भी लिखते हैं।

''जो संदेश मैं समस्त दृष्टिहीनों को देना चाहूँगा वह है - अपनी बाधाओं पर मनन कीजिए। प्रत्येक काम करने के तरीके व माध्यम हैं, यद्यपि दृष्टि महत्वपूर्ण है परन्तु अनेक कामों में उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती,'' डॉ. अमरनाथ कहते हैं, ''ऐसी स्थिति में हमें भौतिक विश्व को मित्रों की आँखों से देखना सीख लेना

चाहिए। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि दुनिया अब भी सुन्दर है। ओस कण पहले की ही भाँति सहज रूप से टपकते हैं, और मुझे विश्वास है कि मेरे द्वारा पत्ती को छूने से असंख्य रंग फूट पड़ेंगे। यदि आप भूलवश मकड़ी के जाले को नष्ट कर देते हैं तथा अपराध का अनुभव करते हैं तो भी स्पर्श करने पर वह रेशमी प्रतीत होगा। मुझे विश्वास है कि वास्तव में हम सभी को, भौतिक विश्व का अनुभव करने की आवश्यकता है तथा दूसरों से सीखने की भी जरूरत है।''

•

# सिद्धार्थ शर्मा
## उत्कृष्टता की ओर अग्रसर

—आनन्द शर्मा

सिद्धार्थ शर्मा का जन्म नई दिल्ली में 4 मई, 1966 को हुआ। उन्होंने दिल्ली के एक प्रसिद्ध कॉलेज से बी. ए. किया। तत्पश्चात एक वस्त्र-निर्यात कम्पनी में काम करने के साथ-साथ नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ फैशन टैक्नोलोजी (NIFT) में अध्ययन रत रहे।

दिसम्बर, 1990 में एक ठंडी व कोहराग्रस्त रात को सिद्धार्थ अपने मित्र के साथ मोटरसाइकिल से घर लौट रहे थे कि रास्ते में पुलिस अवरोध से टकरा गए। चोट लगने से उनकी दृष्टि तुरन्त समाप्त हो गई और वह कोहरा उनके जीवन को न केवल धुंधला अपितु अंधकारपूर्ण बना गया। विश्व के अग्रणी नेत्र विशेषज्ञों से परामर्श किया गया तथा अंततः मास्को के विश्व प्रसिद्ध फ्योदोराव इन्स्टीट्यूट के नेत्र विशेषज्ञों ने दो बार ऑपरेशन किया। दुर्भाग्यवश असफलता ही हाथ लगी तथा सिद्धार्थ को पूर्ण दृष्टिबाधा के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

1992 में वे राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान (NIVH) देहरादून में ब्रेल, अनुस्थितिज्ञान तथा गृहकार्य में प्रशिक्षण के लिए गए। इसी दौरान उन्हें दार्जिलिंग के हिमालयन माउण्टनियरिंग इन्स्टीट्यूट में कुछ समय बिताने को मौका मिला। यहाँ उन्होंने दृष्टिबाधित युवकों के एक दल का 14 हजार फुट ऊँची सिक्किम के दजोंगरी शिखर (Dzongri Peak) के पर्वतारोहण अभियान का सफल नेतृत्व किया। सिद्धार्थ के लिए यह विजय अत्यधिक उत्साह एवं विश्वासवर्धक सिद्ध

हुई। 1993 के आरम्भ में उन्होंने अपने मित्र तथा फेसिनेशन इण्या नामक निर्यात कम्पनी के मालिक विवेक भूषण के आग्रह पर उनके साथ काम करना आरम्भ कर दिया। दुर्घटना से पहले भी वे यहीं सेवारत थे। 15 महीने बाद उन्हें प्रतीत हुआ कि दृष्टिबाधित व्यक्ति लिए वस्त्र निर्माण तथा फैशन उद्योग में अपनी महत्वाकाँक्षा पूरी करना सम्भव नहीं है।

इस अवसर पर सिद्धार्थ शर्मा ने त्यागपत्र देने तथा किसी अन्य क्षेत्र में किस्मत आजमाने का साहसिक कदम उठाया। कुछ समय बाद उन्होंने एक आभूषण निर्माता के साथ काम शुरू किया। दोनों ने मिलकर उस समय प्रचलित आभूषण बेचने तथा निर्यात करने का व्यापार किया। हालांकि उन्हें यह व्यवसाय बड़ा लाभदायक तथा रुचिकर लगा परन्तु यह भी महसूस हुआ कि इसमें उन्हें सदैव किसी दृष्टिवान की सूचनाओं पर निर्भर रहना पड़ेगा। इन्हीं दिनों दृष्टिहीनों के लिए क्रिकेट का प्रथम विश्व कप टूर्नामेंट आयोजित किया जा रहा था। सिद्धार्थ ने आयोजन समिति के सदस्य के रूप में जनसम्पर्क का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व संभाला। भारतीय तथा विदेशी मीडिया के साथ उन्होंने पत्रकार सम्मेलनों का सफलतापूर्वक आयोजन करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी व्यावसायिक क्षमताओं से प्रभावित होकर डालमिया समूह की एक सहायक जनसर्म्पक कम्पनी 'कनैक्शन्स' (Connexions) ने उन्हें नौकरी के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने अपना नया व्यवसाय सुगमतापूर्वक आरम्भ कर दिया तथा निगम-संचार एवं व्यापार-विकास के उत्तरदायित्व सम्भाले। कुछ ही महीनों में ऐजेन्सी का स्वतन्त्र प्रभारी बनने तथा योग्य सहायकों की मदद से उन्होंने इसके विकास का सफलतापूर्वक संचालन किया।

विभिन्न प्रकार के ग्राहकों के साथ अनुभव से उनका आत्मविश्वास बढ़ा । परिणामस्वरूप उन्होंने अधिक चुनौतीपूर्ण तथा विस्तृत क्षेत्र में काम करने का मन बनाया। श्री शर्मा ने किसी बहुराष्ट्रीय जनसम्पर्क एजेन्सी में नौकरी ढूंढ़ने के प्रयास तेज कर दिए तथा इसके लिए अनेक साक्षात्कार भी दिए। वे कहते हैं कि यद्यपि उनकी व्यावसायिक योग्यता में बहुत रुचि दिखाई गई परन्तु कम्पनी अधिकारियों का उनकी क्षमताओं पर फिर भी संदेह बना रहा।

इसी दौरान उन्होंने एक और साहसिक कदम उठाया तथा अपने भीतर के सुप्त उद्यमी को एक बार फिर जागृत करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने मित्र तथा एक सफल विज्ञापन एजेन्सी 'फाउण्डेशन्स एडवरटाइजिंग' के स्वामी सजल घोष के साथ मिलकर 'फाउण्डेशन्स पी. आर.' कम्पनी स्थापित की। इस कार्य में उनके मित्र तथा कनेक्शन्स कम्पनी में सहकर्मी शाज हसन ने उनकी सहायता की जो अब भी उनके समूह का अभिन्न अंग हैं। सन् 2002 में मात्र एक कम्प्यूटर तथा थोड़े से कर्मचारियों से आरम्भ हुई 'फाउण्डेशन्स पी.आर.' आज एक प्रसिद्ध जनसम्पर्क कम्पनी बन चुकी है। श्री सिद्धार्थ शर्मा के नेतृत्व में अनेक जनसम्पर्क परामर्शदाता



तथा अधिकारियों के सहयोग से इस ऐजेन्सी का काफी विस्तार हुआ है। उनकी ऐजेन्सी को विभिन्न उद्योगों के प्रमुख घरानों के विशिष्ट उत्पादों के विज्ञापन तथा प्रचार का गौरव प्राप्त है।

श्री शर्मा कहते हैं कि उनकी सकारात्मक अभिवृत्ति निश्चित रूप से दूसरों पर प्रभाव डालती है। व्यावसायिक जीवन में हमेशा उनके सहकर्मियों ने उन्हें महत्वपूर्ण सहयोग एवं प्रोत्साहन प्रदान किया।

सिद्धार्थ शर्मा एशिया में गिने-चुने कुछ दृष्टिबाधित जनसम्पर्क व्यावसायियों में से एक हैं। उन्होंने स्वरोजगार के एक नवीन तथा सम्भावनापूर्ण क्षेत्र को अन्य दृष्टिहीनों के लिए उपलब्ध करवा दिया है। इस क्षेत्र में आने वाले इच्छुक युवकों को वे जनसम्पर्क तथा विज्ञापन में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम करने का परामर्श देते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसी डिग्री तथा कम्प्यूटर प्रयोग में दक्षता दृष्टिहीन व्यक्ति को इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर एवं सफल बना सकती है।

श्री सिद्धार्थ शर्मा ने एसोसिएशन ऑफ क्रिकेट फॉर द ब्लाइण्ड इन इण्डिया (ACBI) के साथ सदैव मधुर सम्बन्ध रखे हैं तथा आज भी वे इसकी कार्यकारिणी परिषद के सदस्य हैं।

उन्होंने अपनी दृष्टि विकलांगता को समाज की मुख्यधारा में सहभागी होने के मार्ग में कभी भी बाधा नहीं समझा। वे सदैव वांछनीय व्यवहार, सशक्त सम्प्रेषण कौशल तथा व्यक्तित्व विकास पर विशेष बल देते आए हैं। सिद्धार्थ इन्हें दृष्टिबाधितों के लिए अनिवार्य मानते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि प्रस्तुत छवि सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फैशन में भी उनकी रुचि है तथा वे आधुनिक वेशभूषा को अपनाते हैं। वे पहले भी सक्रिय खिलाड़ी थे और अब भी अच्छे स्वास्थ्य के लिए शारीरिक सौष्ठव का अभ्यास करते हैं।

यद्यपि वर्तमान में स्थानीय समुदाय में वे किसी संगठनात्मक पद पर नहीं हैं, परन्तु वे राजनीति में सक्रिय भूमिका की आकाँक्षा रखते हैं तथा निकट भविष्य में किसी धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दल का सदस्य बनने का मन बना रहे हैं।

•

# सौभाग्या गोयल
## एक विजयी महिला

—मुक्ता अनेजा

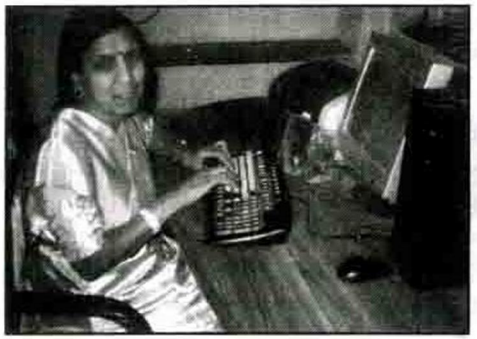

डॉ. सौभाग्या गोयल का जीवन सामाजिक पूर्वाग्रहों तथा बाधाओं पर जीत का एक अनोखा उदाहरण है। दृष्टिबाधा के बावजूद उन्होंने महिला सशक्तिकरण की एक नई मिसाल कायम की है।

उनका जन्म 25 अॅक्टूबर, 1955 को राजस्थान के अजमेर नगर में एक शिक्षित तथा सम्पन्न परिवार में हुआ। उनकी दृष्टिहीनता का कारण दृष्टि-पटल विच्छेदन था जिसने उन्हें सात वर्ष की आयु में पूर्ण दृष्टिबाधित बना दिया। परिणामस्वरूप एक ओर उन्हें दृष्टिबाधाजन्य आघात सहना पड़ा तो दूसरी ओर सामान्य रूप से लड़कियों के विषय में प्रचलित रुग्ण मानसिकता तथा अज्ञान के कुप्रभाव भी सहने पड़े। हाँ, बालिका सौभाग्या के लिए यह प्रसन्नता की बात थी कि उन्हें परिवार की ओर से पर्याप्त सहयोग, स्नेह व सहायता मिली। उन्होंने स्कूली शिक्षा नई दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय वृजानन्द अन्ध कन्या विद्यालय' से प्राप्त की। ''होनहार बिरवान के होत चीकने पात'' वाली कहावत के अनुसार उनकी बौद्धिक क्षमता का परिचय आरम्भ से ही मिलने लगा जब वे कक्षा में प्राय: प्रथम स्थान प्राप्त करती थीं। उन्होंने यहाँ पर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा ग्रहण की। सौभाग्या की बड़ी बहन जोकि अधिवक्ता हैं, ने उन्हें उच्च अध्ययन के लिये प्रेरित किया। अत: राजस्थान लौटकर भी उन्होंने अपने शिक्षाक्रम को जारी रखा। उन्होंने क्रमश: बी.ए. आनर्स, बी. एड. तथा एलएल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। अपनी संकल्प शक्ति को प्रदर्शित करते हुए उन्होंने एम. ए., एम. फिल. तथा अन्तत: पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा



उनके लिए आत्मनिर्भरता का पर्याय बन चुकी थी। सौभाग्या ने परीक्षाओं में हिन्दी व अंग्रेजी टाइपराइटर इस्तेमाल कर एक नया कीर्तिमान भी अपने नाम कर लिया। उन्होंने अध्यवसाय की अभूतपूर्व शक्ति के साथ-साथ दृष्टिबाधित महिलाओं के समक्ष आने वाली अन्य बाधाओं से जूझने की भी अनोखी इच्छाशक्ति का प्रदर्शन किया।

यद्यपि डॉ. गोयल ने कॉलेज व विश्वविद्यालय स्तर पर स्वर्ण पदक लेकर अपनी श्रेष्ठता साबित कर दी थी परन्तु नौकरी के समय अधिकारियों के मन में उनकी शिक्षण क्षमता को लेकर सन्देह अवश्य था। समाज में व्याप्त अविश्वास एवं संशय के बावजूद वे मुख्यधारा में व्यवसाय प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प थीं। अपनी परिश्रमशीलता का लाभ उन्हें वर्ष 1981 में प्राप्त हुआ, जब राजस्थान सरकार के महाविद्यालय शिक्षा निदेशालय ने उन्हें इतिहास विभाग में प्रवक्ता पद पर नियुक्त किया। अगले वर्ष लोक सेवा आयोग द्वारा उनका चयन समान पद के लिए कर लिया गया।

सन् 1981 में ए. आई. सी. बी. से प्राप्त इस सूचना ने उन्हें बहुत प्रोत्साहित किया कि वे महाविद्यालय स्तर पर शिक्षण करने वाली उत्तर भारत की गिनी-चुनी दृष्टिबाधित महिलाओं में से एक हैं। इस संगठन से प्राप्त प्रोत्साहन ने उनकी आत्म-छवि को संवर्धित करने के साथ-साथ उनकी परिश्रमशीलता में भी वृद्धि की। आजकल वे अजमेर के शासकीय स्नातकोत्तर कॉलेज में इतिहास विभाग की अध्यक्ष हैं। शिक्षण प्रतिबद्धताओं के साथ-साथ डा. सौभाग्या गोयल एम.फिल. तथा पीएच.डी. उपाधियों के लिए सात शोधार्थियों का मार्गदर्शन कर रही हैं। अपने 25 वर्षीय व्यावसायिक जीवन में योग्यता व समर्पण के फलस्वरूप वे सफल अध्यापिका होने के अतिरिक्त छात्रों में लोकप्रिय शिक्षिका भी बन गई हैं। उन्होंने हमेशा अपने विद्यार्थियों में निहित गुणों को सर्वोत्तम रूप में विकसित करने का प्रयास किया है। छात्रों ने भी परीक्षाओं में प्राय: उत्तम परिणाम प्राप्त कर उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने का भरसक यत्न किया है।

डॉ. गोयल ने इतिहास में गहन रुचि तथा सतत अध्यवसाय के परिणास्वरूप इस विषय पर तीन पुस्तकें एवं 32 शोधपत्र प्रकाशित किये हैं। उनकी पुस्तकें राजस्थान के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित की जा चुकी हैं तथा वे विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय भी हुई हैं। अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र से सम्बद्ध अनेक मुद्दों पर उन्होंने लेख लिखे हैं और वे क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने शोधपत्र प्रस्तुत करने के गौरवशाली अवसर भी प्राप्त हुए हैं।

डॉ. सौभाग्या गोयल के सामाजिक योगदान को शिक्षण क्षेत्र के बाहर भी प्रशंसा व स्वीकृति प्राप्त हुई है। उन्हें राजस्थान सरकार द्वारा विकलांगता अधिनियम

–1995 तथा राष्ट्रीय न्यास अधिनियम–1999 के अन्तर्गत स्थापित समितियों का सदस्य बनाया गया है।

उनकी बहुमुखी प्रतिभा को अनेक संस्थाओं, संगठनों तथा सरकार द्वारा प्रशंसा एवं स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अपने व्यावसायिक जीवन के आरम्भ,वर्ष 1982 में उन्हें राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। एन. ए. बी., मुम्बई द्वारा उन्हें सन् 1985, 2001 तथा 2003 में तीन बार पुरस्कृत किया जा चुका है। भारत सरकार द्वारा सर्वोत्तम विकलांग कर्मचारी का अवार्ड उन्हें 1994 में प्राप्त हुआ। 1996 में वर्ल्ड यूथ ऑर्गेनाइजेशन ने एक पुरस्कार प्रदान कर सौभाग्या को उनकी सेवाओं के लिए सम्मानित किया। उन्हें 2002 में ए.आई.सी.बी. का 'श्रेष्ठ दृष्टिबाधित महिला' का प्रतिष्ठित सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

इस योग्य व सशक्त महिला का विचार है कि बाधाओं को सफलतापूर्वक पराजित करने की कुँजी एकाग्रता, समर्पण एवं अध्यवसाय के संश्लेषण में निहित है। उनका मानना है कि वर्तमान प्रतियोगितापूर्ण विश्व में दृष्टिबाधित व्यक्ति को प्रगति करने के लिए दृढ़ इच्छा एवं कठिन परिश्रम के साथ अपना कार्य करना चाहिए, वे विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की प्रबल समर्थक व प्रवक्ता रही हैं तथा उन्होंने विकलांगता अधिनियम–1995 को क्रियान्वित करवाने के लिए सतत संघर्ष किया है।

डॉ. सौभाग्या गोयल देश की हजारों दृष्टिबाधित व दृष्टिवान महिलाओं के लिए सफलता प्राप्त करने तथा आगे बढ़ने का प्रतीक बन चुकी हैं। उन्होंने अपने अविरल संघर्ष एवं सफलता से यह सिद्ध कर दिया है कि दृष्टिबाधित महिलाओं के सशक्तिकरण की अवधारणा मात्र खोखले भाषणों तथा वातानुकूलित कमरों की शब्दाडम्बरपूर्ण चर्चाओं तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, अपितु इसे उपयुक्त शिक्षा एवं इच्छाशक्ति के बल पर ठोस वास्तविकता में सफलतापूर्वक परिवर्तित किया जाना चाहिए।

•



# श्री रामभद्राचार्य

## द्रष्टा व धर्माचार्य

—मुक्ता अनेजा

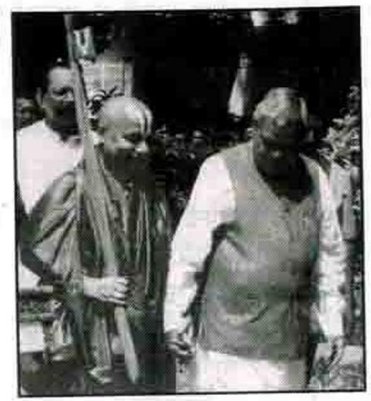

उत्तर प्रदेश में चित्रकूट शताब्दियों से हिन्दू आस्था का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। गत एक दशक से यह एक जगद्गुरु के आश्रम के फलस्वरूप विकलांगता पुनर्वास के लिए भी प्रसिद्ध हो गया है। जगद्गुरु दैहिक दृष्टिहीनता के बावजूद अपनी प्रखर प्रतिभा एवं विद्वता के लिए प्रख्यात हैं।

जगद्गुरु श्री रामभद्राचार्य का जन्म 14 जनवरी, 1950 को जिला जौनपुर, उत्तर प्रदेश के शांडीखुर्द नामक ग्राम में हुआ। माता–पिता ने उनका नाम गिरिधर रखा तथा 28 वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण करने के पश्चात उन्हें रामभद्राचार्य कहा जाने लगा। जन्म के समय उनकी आँखें स्वस्थ थीं परन्तु दो माह की अवस्था में संक्रमणवश सूज गईं। परम्परागत घरेलू उपचार निरर्थक सिद्ध हुए। अत: बालक गिरिधरलाल को पास के गाँव की एक नीम–हकीम महिला के पास ले जाया गया। उन्होंने एक गर्म घोल आँखों में डाला। फलत: आँखों से खून बह निकला। इसे अबोध ग्रामीण माता–पिता ने आँखें ठीक होने का प्रमाण मान लिया। उस समय बालक के सदा सर्वदा के लिए दृष्टिहीन हो जाने के फलस्वरूप उपजी व्यथा को कोई नहीं समझ पाया ।

उन दिनों बालक के पिता मुम्बई में रहते थे। अत: उनका पालन–पोषण अपने पितामह की छत्र–छाया में होने लगा। उन्होंने बालक के कोमल हृदय, मन व मस्तिष्क में हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के प्रति रुचि उत्पन्न की। बालक गिरिधर की स्मरण शक्ति असाधारण थी। उन्होंने 5 वर्ष का होते–होते श्रीमद्भगवद् गीता

तथा 8 वर्ष की आयु से पूर्व ही सम्पूर्ण रामचरितमानस कंठस्थ कर लिया था।

11 वर्ष की आयु में घटित एक घटना ने गिरिधरलाल के मानसपटल पर एक गहन पीड़ादायक एवं अमिट टीस अंकित कर दी। वे परिवार में हो रहे एक विवाह के अवसर पर बारात में सम्मिलित होना चाहते थे परन्तु उन्हें रोक दिया गया। दृष्टिहीनता के प्रति अन्धविश्वास एवं पूर्वाग्रह इतना अधिक था कि उनकी उपस्थिति को वर-वधू के लिए अशुभ समझा गया। यह अलग बात है कि आज धर्माचार्य बनने के पश्चात ऐसे शुभ अवसरों पर उनकी उपस्थिति के लिए विशेष अनुनय तथा प्रयास किये जाते हैं।

यद्यपि बालक गिरिधरलाल ने अपनी आयु की दृष्टि से असाधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था परन्तु दृष्टिबाधा के कारण अपने दूसरे भाई-बहिनों की तरह औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उनका परिवार उन्हें कथा-वाचक बनाने का इच्छुक था परन्तु उन्हें इस समय अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं था। उनकी जिद को देखते हुए उनके पिता उपयुक्त शिक्षा सम्भावना की खोज में वाराणसी गये। वहाँ के दृष्टिबाधितार्थ स्कूल में प्रवेश दिलाने का विचार बना तो गिरिधर की माता ने वहाँ पर छात्रों के साथ किये जाने वाले बर्ताव को अमानवीय बताकर अपने बच्चे को उस विद्यालय में प्रवेश दिलाने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप अपने गाँव के पास ही उन्हें गौरीशंकर महाविद्यालय नामक एक संस्कृत विद्यालय में भेजा गया।

इस प्रकार गिरिधरलाल ने 1966 में शिक्षा आरम्भ की तथा संस्कृत एवं अन्य विषय सीखते हुए 5 वर्ष व्यतीत किये। उनके अध्यापक तथा सहपाठी उनके दृढ़-निश्चय, अध्यवसाय, कौशल तथा किसी भी चीज को मात्र एक बार सुनकर याद कर लेने की असाधारण स्मरण शक्ति से बहुत अधिक प्रभावित हुए। अपनी असाधारण स्मरण क्षमता के कारण ही उन्होंने कभी ब्रेल अथवा किसी अन्य सम्बद्ध प्रौद्योगिकी का सहारा नहीं लिया। उन्होंने हर साल प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1971 में उन्होंने वाराणसी स्थित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया।

यहाँ पर उनके नम्र व मधुर व्यवहार तथा उनकी असाधारण प्रतिभा एवं अद्वितीय स्मरण शक्ति ने सभी को प्रभावित किया। इस प्रकार वे अपने शिक्षकों व सहपाठियों दोनों के प्रिय बन गये।

यद्यपि गिरिधर एक साधारण व ग्रामीण पृष्ठभूमि से आये थे परन्तु विश्वविद्यालय के परिवेश के साथ समायोजन में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने शास्त्री तथा आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त कीं तथा विश्वविद्यालय के समस्त पूर्व कीर्तिमान तोड़कर सर्वाधिक अंक प्राप्त किये। उन्हें शास्त्री तथा आचार्य दोनों ही पाठ्यक्रमों की समाप्ति पर स्वर्ण-पदक प्रदान किये गये।

यद्यपि आचार्य उपाधि के लिये उन्होंने व्याकरण विषय का चयन किया था



परन्तु परीक्षक उनकी योग्यता से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें विश्वविद्यालय में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय का आचार्य घोषित कर दिया गया। इस अध्ययन के दौरान उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की फैलोशिप भी प्राप्त हुई।

गिरिधरलाल के लिये सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय मात्र उपाधियाँ प्राप्त करने का केन्द्र भर नहीं था अपितु धार्मिक ज्ञान का भी अद्वितीय स्थान सिद्ध हुआ। यहाँ पर वे अनेक विद्वानों के सम्पर्क में आये। उन्होंने स्वयं भी अनेक धार्मिक प्रवचनों तथा शास्त्रार्थ सभाओं में भाग लिया एवं विभिन्न स्तरों पर पुरस्कार प्राप्त किये। इस प्रकार उन्हें स्वयं को बौद्धिक ज्ञान एवं संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनमें तत्काल श्लोकरचना की अद्वितीय क्षमता थी। जब वे 1973 में दिल्ली में संस्कृत की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेने आए तो अनेक संस्कृत पंडितों ने उनकी यह क्षमता स्वयं देखी। उन्होंने आठ में से पाँच स्वर्ण पदक जीत लिये। उनकी उपलब्धियों से प्रभावित होकर तत्कालीन प्रधानमंत्री ने आँखों के उपचार हेतु उन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका भेजने का प्रस्ताव रखा परन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक इसे अस्वीकार कर दिया।

आचार्य की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात गिरिधरलाल ने पीएच.डी. के लिए अध्ययन आरम्भ किया। साथ ही साथ, अब वे धनोपार्जन के लिए कथावाचन भी करने लगे। आचार्य व पीएच.डी. करने के दौरान उन्हें अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

शीघ्र ही गिरिधरलाल की ख्याति प्रवचनकर्ता एवं विद्वान के रूप में चारों ओर फैलने लगी। 1978 में उन्हें एक विशिष्ट कथा के लिए चित्रकूट आमन्त्रित किया गया और तब से आज तक चित्रकूट ही उनकी कर्मभूमि है।

1978 का वर्ष उनके जीवन में अनेक कारणों से अति महत्वपूर्ण था। न केवल वे उस वर्ष महत्वपूर्ण कथा के लिए चित्रकूट ही गये अपितु गुजरात भी पहुँचे, जहाँ एक बार पुन: उनकी बड़ी बहिन मिली तथा उन्होंने गिरिधरलाल को अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में सहयोग देने का वचन दिया। गीता देवी तभी से उनके साथ हैं तथा आज भी उनके कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। 1978 के वर्ष का महत्व उनके लिए इसलिए भी है, कि इसी वर्ष उन्होंने सन्यास ग्रहण करने का निर्णय लिया तथा औपचारिक रूप से रामानन्द सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये। इसके पश्चात वे पहले रामभद्रदास एवं तदोपरान्त रामभद्राचार्य कहलाने लगे।

औपचारिक रूप से सन्यास ग्रहण करने से पूर्व वे पीएच.डी. प्रारम्भ कर चुके थे जिसे सन् 1981 में उन्होंने पूर्ण कर लिया। उसी वर्ष उन्हें सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय से व्याकरण विभाग का प्रमुख नियुक्त करने का प्रस्ताव भी प्राप्त हुआ। उन्हें यह प्रस्ताव बिना प्रार्थनापत्र के दिया गया था जो उनके व्यापक ज्ञान एवं योग्यता का

प्रमाण है। परन्तु भाग्य ने उनके लिये एक दूसरा ही जीवन-लक्ष्य निर्धारित कर रखा था। संक्षिप्त विचार तथा बहिन गीता देवी से परामर्श के पश्चात उन्होंने इस नियुक्ति को अस्वीकार करने का निर्णय लिया क्योंकि अब तक उन्हें विश्वास हो चुका था कि उनका जन्म समाज, धर्म तथा साहित्य की सेवा हेतु हुआ है।

इस जीवन-लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अंततः 1983 में अपनी बहिन के साथ सदा-सर्वदा के लिए घर त्याग दिया एवं यथार्थ में परिव्राजक बन गये। अगले तीन वर्षों में श्री रामभद्रदास को गम्भीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनके पास रहने को जगह नहीं थी, बहिन गीता भी उनके पास नहीं थी क्योंकि वे तीन वर्ष लम्बे एक अनुष्ठान में व्यस्त थीं। उन्हें अपने सहायक को वेतन देने में भी कठिनाई होती थी और वह उनके साथ दुर्व्यवहार ही नहीं करता था अपितु उनकी दृष्टिहीनता पर भी कटाक्ष करता था। ऐसी विकट परिस्थितियों में भी श्री रामभद्रदास अपने चयनित लक्ष्य से लेश मात्र भी विचलित नहीं हुए। इसी बीच अनेक लोग उनके शिष्य बन गये। अंततः अपनी बहिन के आने और कुछ शिष्यों तथा धार्मिक विचार के व्यक्तियों की सहायता से उन्होंने 1987 में चित्रकूट में अपना तुलसीपीठ आश्रम स्थपित किया।

गत 18 वर्षों में उन्हें प्रतिष्ठा भी मिली और ख्याति भी । सन् 1988 में उनके सम्प्रदाय ने उन्हें तुलसीपीठ का रामानन्द आचार्य घोषित कर दिया। अब उन्होंने साहित्य रचना की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया। सर्वप्रथम उन्होंने हिन्दी में अरुन्धती नामक महाकाव्य की रचना की। तत्पश्चात संस्कृत के महाकाव्य श्री भार्गव राघवीयम् की रचना हुई। दोनों महाकाव्यों को व्यापक साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 1997 में उन्हें सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट् की उपाधि प्रदान की गई। इससे पूर्व 1995 में अयोध्या में हिन्दुओं की एक धर्मसभा द्वारा भद्राचार्य जी को पुनः तुलसीपीठ के रामभद्राचार्य के रूप में पीठ का अविवादित आचार्य स्वीकार किया गया।

इसके पश्चात उनके मन में प्रस्थानत्रय पर भाष्य लिखने की उत्कट आकाँक्षा उत्पन्न हुई। यदि कोई व्यक्ति हिन्दू संतों की सर्वोच्च सभा द्वारा प्रदत्त 'जगद्गुरु' की पदवी के लिए प्रत्याशी बनना चाहता है तो इस प्रकार की टीका लिखना अपरिहार्य आवश्यकता है। श्री भद्राचार्य के भाष्य का विमोचन 6 अप्रैल, 1988 को भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री द्वारा किया गया। तत्पश्चात 10 अप्रैल, 1988 के दिन श्री रामभद्राचार्य को धर्म-चक्री की उपाधि प्रदान की गई तथा उन्हें विश्व धर्म संसद द्वारा 'जगद्गुरु' घोषित कर दिया गया। यह किसी भी व्यक्ति के लिये गौरवमय उपलब्धि है। जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले श्री भद्राचार्य जी प्रथम दृष्टिहीन व्यक्ति हैं।

अपने बुद्धि-कौशल तथा कार्य के परिणामस्वरूप वे अनेक बार विदेश यात्रा भी



कर चुके हैं। स्वामी भद्राचार्य जी ने 1992 में इंडोनेशिया में रामायण पर आयोजित नवें विश्व सम्मलेन में भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का प्रतिनिधित्व किया। हिन्दू धर्म पर प्रवचन देने के लिए वे सिंगापुर, मारीशस तथा इंग्लैण्ड की यात्रा भी कर चुके हैं।

जगद्गुरु का अतिविशिष्ट पद प्राप्त होने के बावजूद स्वामी जी ने अपनी सामाजिक व साहित्यिक प्रतिबद्धताओं एवं उत्तरदायित्वों का त्याग नहीं किया है। सामाजिक क्षेत्र में वे अनेक गैर सरकारी संगठनों से सम्बद्ध हैं। इनमें से प्रमुख 100 बिस्तरों वाला चिकित्सालय है जो उनके द्वारा गुजरात में संचालित किया जा रहा है।

अपने बाल्यकाल के कटु अनुभवों को ध्यान में रखते हुए तथा अनेक विकलांग व्यक्तियों की दुर्दशा से व्यथित होकर स्वामी रामभद्राचार्य ने चित्रकूट में 1996 में दृष्टिबाधित बालकों के लिए एक स्कूल स्थापित किया। वे विकलांगों को सहायता एवं निःशुल्क उपकरण वितरण के लिये कई शिविर भी आयोजित कर चुके हैं। उन्होंने सन् 2001 में विकलांगों के लाभ हेतु एक विश्वविद्यालय की स्थापना की, जिसे जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय कहा जाता है। यह विकलांगों के लिए विश्व का प्रथम विश्वविद्यालय है जहाँ पर उन्हें निःशुल्क शिक्षा के साथ-साथ बाधा मुक्त परिवेश तथा आधुनिक उपकरण भी उपलब्ध करवाए जाते हैं। इस विश्वविद्यालय को राज्य सरकार तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्रदान की जा चुकी है।

जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य ने अपने जीवन के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि यदि किसी व्यक्ति को अपने जीवन-लक्ष्य में आस्था, दृढ़-विश्वास एवं समर्पण भाव हो तो शारीरिक विकलांगता, आर्थिक परिस्थितिजन्य कठिनाइयाँ एवं सामाजिक पूर्वाग्रह उसकी लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बाधक नहीं हो सकते।

•

# सुरेन्द्र सिंह सांगवान
## ख्याति-प्राप्त शिक्षाशास्त्री

—मुक्ता अनेजा

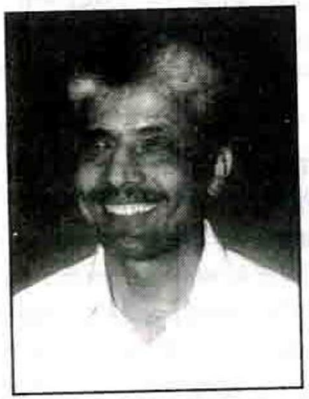

उन्नीस सौ सत्तर के दशक के प्रारम्भ में जब एक प्रतिभाशाली छात्र ने एम. ए. के लिए अंग्रेजी विषय चुनने की इच्छा प्रकट की तो लोगों को लगा कि जैसे वह समय से सदियों आगे की बात कर रहा था। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी क्योंकि वह विद्यार्थी दृष्टिबाधित था और उस समय विकलांगों के प्रति पूर्वाग्रह अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ व व्यापक थे। तत्कालीन समाज का विश्वास था कि दृष्टिहीनों के लिए कुर्सी बुनाई एवं संगीत ही उपयुक्त व्यवसाय थे किन्तु सुरेन्द्र जैसे व्यक्ति समाज की दकियानूसी सोच से सहमत नहीं थे वे अपनी धारणा के अनुसार आगे बढ़े। उन्नति करते हुए न केवल वे प्रोफेसर बने अपितु विश्वविद्यालय में अनेक प्रतिष्ठित पदों को भी सुशोभित करते रहे।

सुरेन्द्र सिंह सांगवान का जन्म 3 अक्टूबर, 1952 को हरियाणा के जिला रोहतक के ग्राम निलोठी में हुआ। उनकी आँखें दृष्टि-पटल विच्छेदन से सात वर्ष की आयु में खराब हो गईं। आरम्भ में परिवार को इससे गहरा आघात लगा परन्तु धीरे-धीरे उन्होंने बालक को सम्मानजनक जीवन के लिए तैयार करना आरम्भ कर दिया। सुरेन्द्र ने दृष्टिबाधा के कारण गांव में पढ़ाई छोड़ दी थी परन्तु चार साल बाद 11 वर्ष की आयु में पानीपत, हरियाणा के शासकीय दृष्टिहीनार्थ विद्यालय में उन्होंने पुनः पढ़ना आरम्भ किया। सांगवान के पिता एक सरकारी विद्यालय के मुख्य अध्यापक थे। परिणामस्वरूप उन्हें अध्ययन एवं समग्र विकास के लिए घर में प्रेरक परिवेश प्राप्त हुआ। बाल्यकाल का समय बड़ा संवेदनशील होता है, फलतः परिवार की ओर से



प्राप्त सकारात्मक परिवेश ने सुरेन्द्र के आत्मसम्मान तथा उपयुक्त आजीविका प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज वे याद करते हैं कि उनके दादाजी को बचपन से ही उनकी क्षमताओं में अटूट विश्वास था।

उन दिनों दृष्टिबाधितार्थ विद्यालय छात्रों को संगीत व हस्तकला पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सुरेन्द्र का मन लोगों की इस सामान्य प्रवृत्ति का विरोधी था कि दृष्टि-विकलांग व्यक्ति केवल गायक बनने की क्षमता रखता है। इस विद्रोह ने उनके मन में किसी अन्य क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जागृत की। साथ ही वे समाज में समानता के अवसर की प्राप्ति के भी इच्छुक थे। उन्होंने दृष्टिहीनार्थ विद्यालय पानीपत में आठवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात उन्होंने गांव में एक सरकारी स्कूल में प्रवेश लिया। अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा परिश्रम के बल पर वे दूसरे छात्रों से स्वयं को श्रेष्ठतर सिद्ध कर पाए। परिणामस्वरूप उनके शुभचिंतक आदि को मैट्रिक में उनका नाम योग्यता-सूची में देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

परन्तु सांगवान जब हिसार के एक कॉलेज में उच्च अध्ययन के लिए प्रवेश प्राप्त करने के लिए पहुँचे तो कॉलेज के प्रधानाचार्य इसके लिए तैयार नहीं थे। उनका विचार था कि दृष्टिबाधित को प्रवेश देने का अभिप्राय है कॉलेज के लिए अतिरिक्त भार तथा उत्तरदायित्व। उन्हें प्रधानाचार्य को विश्वास दिलाना पड़ा कि वे अपनी सुरक्षा, इधर-उधर आने-जाने तथा अध्ययन के लिए स्वयं उत्तरदायी होंगे। उसके पश्चात ही उन्हें प्रवेश मिल पाया परन्तु शीघ्र ही इस विद्यार्थी की प्रखर प्रतिभा को देखकर शिक्षक तथा प्रधानाचार्य अपने विचार बदलने पर विवश हो गये। उन्होंने प्रशंसनीय अंक लेकर स्नातक उपाधि प्राप्त की और एक बार फिर उनका नाम पंजाब विश्वविद्यालय की योग्यता सूची में सम्मिलित हुआ। दूसरे लोगों की आशंका तथा सन्देह के बावजूद सांगवान ने अंग्रेजी विषय में एम. ए. करने का निर्णय लिया और विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

इन उपलब्धियों के लिए उन्होंने जीवन में बड़ा संघर्ष किया परन्तु यह अभी चरम-सीमा तक नहीं पहुँचा था। एम. ए. में प्रथम स्थान प्राप्त करने के बावजूद कोई भी कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर उन्हें अंग्रेजी शिक्षण के लिए उपयुक्त नहीं समझता था। कॉलेज विद्यार्थियों को पढ़ाने का अवसर उनके लिए एक चुनौती बन गई। बड़ी मेहनत के बाद सन् 1975 में उन्हें विश्वविद्यालय संध्याकालीन कॉलेज, रोहतक, हरियाणा में अंशकालिक आधार पर नियुक्ति प्राप्त हुई। यहाँ भी स्वीकृति से पूर्व उनकी जाँच की गई। ज्वाइनिंग प्रतिवेदन स्वीकार करने से पूर्व वहाँ के प्रधानाचार्य तथा अंग्रेजी के विभागाध्यक्ष ने सांगवान के कक्षा-कक्ष शिक्षण को सोलह दिन तक परखा।

सुरेन्द्र सांगवान के प्रभावशाली शिक्षण, विद्यार्थियों की प्रशंसनीय प्रतिक्रिया

तथा उनके श्लाघनीय परीक्षाफल का संस्थान के प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। 1977 तक उन्हें योग्यतानुसार स्थाई नियुक्ति प्राप्त हो गई। विषय में गहन रुचि तथा कुछ बेहतर कर दिखाने की चाह ने सुरेन्द्र सिंह को एम. फिल. करने के लिए प्रेरित किया। उन्हें सन् 1978 में एम. डी. विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा के शिक्षण विभाग में प्रवक्ता का पद प्रत्यक्ष चयन से प्राप्त हो गया।

सुरेन्द्र सिंह सांगवान अध्ययन व शिक्षण में गहन रुचि के फलस्वरूप धीरे-धीरे व्यवसाय की नवीन ऊँचाइयों को छूने लगे। उन्होंने 1986 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में पीएच.डी. के लिए हैंमिग्वे के कथा साहित्य पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। तत्पश्चात यह शोध प्रबन्ध 'हैंमिग्वे का कथा साहित्य' शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। 1994 में अंग्रेजी का प्रोफेसर बनकर उन्होंने अपने बाल्यकाल के स्वप्न को साकार कर दिखाया। इस प्रकार डॉ. सांगवान ने प्रसिद्ध उक्ति सिद्ध कर दी कि "भविष्य उन्हीं का संवरता है जो अपने सपनों में विश्वास रखते हैं।" शिक्षण-क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए डॉ. सांगवान को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा 1996 में सम्मानित किया गया। उन्होंने अनेक शोध लेख भी लिखे हैं। उनके द्वारा सम्पादित 'द साउण्डस ऑफ स्टिलनैस' (The Sounds of Stillness) नामक पुस्तक प्रकाशित होने वाली है।

विश्वविद्यालय में उनके उत्तरदायित्वों में शिक्षण के साथ-साथ प्रशासन भी सम्मिलित रहा है। उन्होंने 1995 तक मानविकी संकाय (Faculty of Humanities) के डीन तथा 1996 से 1999 और पुन: 2000 से अब तक विभागाध्यक्ष के उत्तरदायी पदों पर कुशलतापूर्वक कार्य किया है। इसके अतिरिक्त वे अध्ययन परिषद (Board of Studies) के सभापति, एकेडमिक परिषद विश्वविद्यालय कोर्ट के सदस्य भी रह चुके हैं।

अनेक चयन समितियों में कुलपति के प्रतिनिधि तथा विशेषज्ञ के रूप में वे बहुत से प्रवक्ता, रीडर, प्रोफेसर तथा प्रधानाचार्यों के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा चुके हैं।

प्रोफेसर सांगवान ने एम. फिल. तथा पीएच.डी. स्तर पर अनेक शोधार्थियों का मार्गदर्शन भी किया है।

व्यक्तिगत स्तर पर भी डॉ. सांगवान का पारिवारिक जीवन सुखद है। रंजना से उनकी भेंट सन् 1977 में हुई तथा दोनों ने सन् 1979 में विवाह किया। उनकी पत्नी, डॉ. रंजना सांगवान पीएच.डी. उपाधि धारक हैं। सम्प्रति शिक्षा महाविद्यालय, रोहतक में वरिष्ठ प्रवक्ता के रूप में सेवारत हैं। उच्च शिक्षा की दृष्टि से उनके दोनों बच्चों ने भी माता-पिता का अनुसरण किया है। उनका 23 वर्षीय पुत्र भारतीय

प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में अध्ययनरत है तथा 18 वर्षीय बेटी एम. बी. बी. एस. कर रही है।

सार्थक जीवन व्यतीत करते हुए प्रोफेसर सुरेन्द्र सिंह सांगवान कहते हैं, ''दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए (उसका कार्यक्षेत्र चाहे जो भी हो) ज्ञान एवं कुशलता तो अनिवार्य है ही, उसके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण के निर्धारण में उसका वैयक्तिक व्यवहार भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'' उन्हें आशा है कि समाज विकलांगों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना आरम्भ करेगा, लोग इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करेंगे कि विकलांग व्यक्ति क्या कुछ कर सकता है, न कि इस विचार पर कि वह क्या कुछ करने में असमर्थ है।

•

# सुषमा अग्रवाल
## देदीप्यमान गणित शिक्षिका

—मुक्ता अनेजा

सामान्यत: बच्चे गणित को एक जटिल, कठिन व नीरस विषय मानते हैं। परन्तु सुषमा ने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाने के लिये इसी विषय को उपयुक्त समझा।

फरवरी 1960 में जन्मी सुषमा 6 वर्ष की आयु में स्कूल जाने लगी। इस उम्र की दूसरी लड़कियों की तरह उसने भी एक सामान्य और उत्साही स्कूली-जीवन की कल्पना की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी दृष्टि क्षीण होने लगी। यह पूरे परिवार के लिये एक भयंकर विषाद की स्थिति थी। चिकित्सकीय जाँच से पता चला कि बालिका की आँखें रेटिनाइटिस पिग्मेंटोसा (Retinitis Pigmentosa) से ग्रस्त थीं।

शुरू में सुषमा के लिये किताबें पढ़ पाना सम्भव था, परन्तु श्याम-पट्ट पर लिखे शब्द नहीं पढ़े जाते थे। कॉलेज में पहुँचते-पहुँचते पुस्तक पढ़ने की क्षमता भी समाप्त हो गयी।

सुषमा तेजी से दृष्टिबाधिता की ओर बढ़ रही थी। लेकिन आसानी से हार मानना उसके स्वभाव में नहीं था। अध्ययन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्होंने पहले दृष्टिवान मित्रों और फिर अपनी माताजी से वाचन सेवाएं लेना शुरू कर दिया। सुषमा यह सिद्ध करने के लिये कटिबद्ध थी कि दृष्टि अक्षमता का अभिप्राय अपने प्रिय विषय को छोड़ना नहीं होता। इसीलिये उसने गणित सरीखे

चुनौतीपूर्ण विषय में महारत हासिल करने का निर्णय लिया और ऐसा कर भी दिखाया।

बी. एससी. तथा एम. एससी. दोनों ही में प्रखर-बुद्धि युवती ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। वह यू. जी. सी. - सी. एस. आई. आर. की कनिष्ठ छात्रवृत्ति परीक्षा में भी सफल हुई। सुषमा एकाग्रता व समर्पण भाव से अपने लक्ष्य की ओर जाने वाले दुष्कर तथा चुनौतीपूर्ण मार्ग पर बढ़ती गयी। गणित में पीएच.डी. के लिये उन्हें उच्च स्तरीय अध्ययन हेतु राष्ट्रीय परिषद से छात्रवृत्ति प्राप्त हुई।

आई. आई. टी. चेन्नई से गणित में पीएच.डी. करना उनकी कुशाग्र बुद्धि, साहस एवं अथक परिश्रम का अनुपम परिणाम था। वास्तव में 1996 का वह दिन सुषमा तथा उनके परिवार के लिये अविस्मरणीय उल्लास व खुशी से भरा अवसर था, जब उन्हें पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। विज्ञान विषय में पीएच.डी. करने वाली वे भारत की प्रथम दृष्टिबाधित व्यक्ति हैं। इस विशिष्टता के लिये उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री देवगौड़ा से प्रशंसापत्र प्राप्त हुआ।

विशिष्ट उपलब्धियों के बावजूद सुषमा अग्रवाल का संघर्ष समाप्त नहीं हुआ था। शोध एवं शोधोत्तर कार्य द्वारा योग्यता सिद्ध हो चुकी थी, परन्तु नियोक्ताओं को संतुष्ट करना एक टेढ़ी खीर बनी हुई थी। परिणामस्वरूप शिक्षण पदों के लिये उनके प्रार्थनापत्रों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। यह निश्चित रूप से निराशाजनक स्थिति थी किन्तु सुषमा ने हार नहीं मानी। उन्होंने अपने विषय के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में उल्लेखनीय लेख लिखे तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में पत्र प्रस्तुत किये। स्थायी नियुक्ति मिलने से पूर्व उनके थ्योरम (Theorum) सम्बन्धी कई लेख प्रकाशित हुये।

अन्ततः नवम्बर 2000 में अपनी इच्छा व योग्यता के अनुरूप उन्हें मद्रास विश्वविद्यालय के अर्न्तगत गणित हेतु रामानुजन अध्ययन संस्थान में प्रवक्ता का पद प्राप्त हो गया। स्नाकोत्तर तथा एम. फिल. विद्यार्थियों का शिक्षण एवं पीएच.डी. के लिये मार्गदर्शन प्रदान करने में उनकी कुशाग्र बुद्धि व अनूठी प्रतिभा स्वयंसिद्ध है। आज अपने कार्यक्षेत्र में उन्होंने छात्रों का सम्मान तथा सहकर्मियों का सहयोग अर्जित कर अपने लिये सुखद परिवेश तैयार कर लिया है।

सुषमा जी ने न केवल व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी खुश हैं। उनके पति भी इसी व्यवसाय में संलग्न हैं। वे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई में गणित के प्रोफेसर हैं। उनकी एक बेटी है जो कालेज में पढ़ती है।

डॉ. सुषमा अग्रवाल व्यावसायिक तथा सामाजिक रूप से अति व्यस्त रहती हैं। वे प्रायः गोष्ठियों में पत्र प्रस्तुत करती हैं, अल्पकालिक पाठ्यक्रमों में भाग लेती

हैं, विदेश-यात्रा करती हैं तथा तमिलनाडु के विभिन्न संस्थानों में भाषण भी देती हैं। उन्होंने अपने संस्थान में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन भी किया है। अपने विशिष्ट क्षेत्र में योगदान के लिये उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी है। उन्हें इजराइल प्रौद्योगिकी संस्थान में वर्ष 2001 में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के लिये आमंत्रित किया गया। वे वर्ष 2002 में संयुक्त राज्य अमेरिका भी गईं जहाँ उन्होंने 'वाशिंगटन' तथा 'ली' विश्वविद्यालयों में स्वयं एवं भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, चेन्नई के प्रोफेसर एस. एच. कुलकर्णी द्वारा तैयार पत्र प्रस्तुत किया। डॉ. अग्रवाल ने उस देश के और भी कई विश्वविद्यालयों का दौरा किया तथा वहाँ के विद्वानों से चर्चाएं कीं।

अपने विशिष्ट योगदान के लिये डॉ. अग्रवाल को ऑल इंडिया कन्फेडेरेशन ऑफ दि ब्लाइंड सहित अनेक स्वयंसेवी संगठनों से पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। वे स्वयं को एक सामान्य व्यक्ति समझती हैं तथा उनके अनुसार यही उनकी सफलता का मूलमंत्र है। उनका विचार है कि समाज के तथाकथित विकलांग व सामान्य व्यक्ति में भेद-भाव नहीं रखना चाहिये तथा प्रत्येक व्यक्ति के साथ सामान्य व्यवहार अनिवार्य है।

•



# सुशील भूटानी
## सफल उद्यमी

—मुक्ता अनेजा

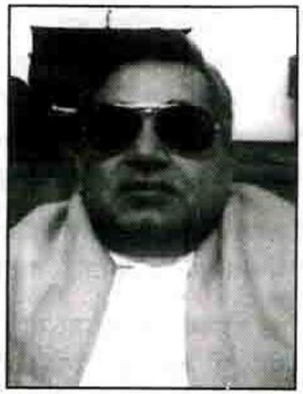

सुशील भूटानी की जीवनगाथा विकलांगता पर विजय का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। मूक, बधिर एवं दृष्टिबाधित प्रसिद्ध लेखिका कु. हेलन केलर के इस कथन को उन्होंने सिद्ध कर दिखाया हैं कि '' लोग कहते थे ऐसा नहीं तो सकता लेकिन ऐसा हुआ।'' सुशील ने व्यापार और उद्यम जगत, जिसे सामान्यत: दृष्टिबाधितों के लिए नहीं जाना जाता, में अपने लिए सम्मानजनक स्थान अवश्य ही बना लिया।

इनका जन्म 20 अगस्त 1950 को गुड़गांव, हरियाणा में स्वस्थ तन, मन व मस्तिष्क वाले बालक के रूप में हुआ पाँच वर्ष की आयु में उनकी शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी। किशोर सुशील व उसके परिवार पर हताशा व दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा जब पन्द्रह वर्ष की आयु में सातवीं कक्षा के दौरान उसकी एक आँख की रोशनी दृष्टिपटल विच्छेद (Retinal Detachment) के कारण जाती रही। उन दिनों भारत में ऐसे लोगों के लिए व्यावसायिक परामर्श सेवाएं भी उपलब्ध नहीं थीं। साथ ही नेत्र विशेषज्ञ ने दूसरी आँख की दृष्टि के भी चले जाने की चेतावनी दी जो निश्चित रूप से तनाव का मुख्य कारण बन गयी।

फलत: सुशील को अपना अध्ययन छोड़कर सोलह वर्ष की आयु में अपने पिता के व्यापार से जुड़ना पड़ा। वे हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड के वितरक थे। जब उनकी उम्र के बालक अध्ययन अथवा खेलकूद में व्यस्त रहते थे, तब सुशील व्यापार जगत के कौशल सीखने में लगे हुये थे। इसलिये कम उम्र में ही उन्होंने अच्छे व्यापारी के गुण सीख लिए।

इस परिवार को दुर्भाग्य का एक और झटका तब लगा जब 1971 में सुशील भूटानी के पिता का देहान्त हो गया। जो कुछ वर्ष सुशील ने विपणन रणनीति सीखने एवं व्यापारिक कौशल विकसित करने में लगाये थे, व्यर्थ नहीं गये अपितु दीर्घ कालीन पूंजी ही साबित हुए।

सुशील अपने बड़े भाई के साथ मिलकर व्यापार करते रहे। अगले वर्ष दोनों भाइयों ने कुछ अन्य उपभोक्ता उत्पाद शामिल कर अपने व्यापार का विस्तार किया। राजस्थान में उन्होंने औषधीय-उत्पाद-वितरक के रूप में कार्य आरम्भ किया। वे अपने मनपसंद काम के प्रति समर्पित व कटिबद्ध थे। अपने व्यापार क्षेत्र के लिये उन्हें बहुत अधिक घूमना पड़ता था। सुशील को लगभग तीन-चौथाई राजस्थान राज्य का व्यापक भ्रमण करना पड़ता था जिसे वे धैर्य व प्रसन्नतापूर्वक करते थे।

सुशील भूटानी की वर्ष 1972 में एक आकर्षक युवती से भेंट हुई तथा अगले वर्ष वे दोनों विवाह सूत्र में बंध गये। वे समझदार तथा समर्पित पत्नी साबित हुईं।

अन्तत: 1977 में वह हो गया जिसका डर सुशील को सदा बना रहता था। उनकी दूसरी आँख की ज्योति भी जाती रही। उनकी दुनिया में अचानक अंधेरा छा गया। अब उन्हें एक ओर तो दृष्टिहीनता-जन्य सीमाओं का सामना करना था और दूसरी ओर गलाकाट प्रतियोगिता के युग में अपने व्यापार को भी संभालना था। वे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहे। आत्म-निर्भरता की सशक्त इच्छा, सम्मानजनक जीवन की ललक तथा परिवार के प्रति अपने दायित्वों का बोध उनकी सतत प्रगति के प्रेरक-कारक सिद्ध हुए। दैनिक व्यापारिक क्रियाओं को सम्पन्न करने, हिसाब-किताब रखने एवं फोन नम्बर याद रखने के लिये उन्हें वैकल्पिक तकनीकी की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने गणनाओं के लिये टॉकिंग कैलकुलेटर तथा आवश्यक फोन नम्बरों के लिये रिकार्डर का प्रयोग किया।

सन् 1983 में श्री भूटानी ने रियल सर्विस (Real Service) नामक कम्पनी की स्थापना की और मुम्बई की एक कम्पनी एल्डर फार्मास्यूटिकल के राजस्थान में मुख्य प्रतिनिधि बन गये। नई कम्पनी के साथ-साथ पुराना व्यापार भी चलाते रहे। भाई के साथ और सुशील के अथक परिश्रम की बदौलत व्यापार तरक्की के रास्ते पर बढ़ता रहा। व्यक्तिगत स्तर पर भी सुशील को खुशियाँ मिलीं, इस दम्पत्ति को दो पुत्रियों व एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

वर्ष 1994 तक जीवन सामान्य गति से चलता रहा। उस समय तक भूटानी संयुक्त परिवार और संयुक्त व्यापार के सदस्य थे। भाई ने अलग होने का निर्णय लिया। सुशील के लिये यह एक झटका था जिसकी पीड़ा को सहना उनकी नियति थी।

एक बार पुन: उन्होंने हिम्मत का सहारा लिया तथा रीयल सर्विस कम्पनी का



कार्य स्वतंत्र रूप से संभाला। दृढ़ इच्छाशक्ति और पहल के आधार पर उन्होंने आय का सम्मानजनक स्तर प्राप्त कर लिया। आज जोधपुर स्थित उनके कार्यालय में सात कर्मचारी, पर्याप्त कम्प्यूटर तथा अन्य उपकरण हैं। कम्पनी की वार्षिक आय सात करोड़ रुपये है। अब उनका बेटा भी व्यापार में उनकी सहायता करने लगा है। सुशील भूटानी कम्प्यूटर-निपुण एवं नवीन प्रौद्योगिकी के दीवाने हैं। अपने व्यापार में आवश्यक सॉफ्टवेयर का वे भली भाँति प्रयोग करते हैं।

वे दूसरों के लिये एक सशक्त उदाहरण हैं। उनका संघर्ष, उनकी उपलब्धियाँ तथा विकट परिस्थितियों में भी सदा आगे बढ़ने की उनकी इच्छाशक्ति अन्य दृष्टिबाधितों के लिये विशेष रूप से प्रेरणादायक हैं। दृढ़ विश्वास के साथ वे कहते हैं ''जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से सब कुछ सम्भव है। सभी बाधाओं को रौंदते चलो और कभी पीछे मत हटो।''

•

# हरीशकुमार पी. कोटियन

## सूचना प्रौद्योगिकी प्रबंधक

—मुक्ता अनेजा

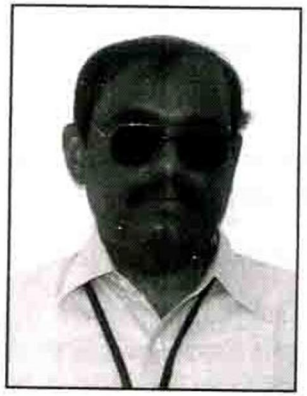

हरीश कुमार कोटियन को विपरीत परिस्थितियों पर मानव मन की विजय में अटूट विश्वास है। उनक दृढ़ मत है, ''मानव मन अद्वितीय है, यह शारीरिक सीमाओं से स्वतन्त्र है।'' उनका स्वयं का जीवन इस कथन की जीती जागती मिसाल है। हरीश कोटियन का जन्म 20 अगस्त 1960 को मुम्बई में हुआ। तेरह वर्ष की आयु में दुर्घटनावश दृष्टिबाधित होने तक वे एक नटखट बालक थे। अचानक पूर्ण दृष्टि-विकलांग होने पर उन्होंने नयी परिस्थितियों से जूझने और फिर सामंजस्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया। आज वे इस परिस्थिति को बहुत पीछे छोड़ चुके हैं। उन्होंने उस एक अनूठे व्यवसाय में सफलतापूर्वक स्वयं को स्थापित कर लिया है, जिसे दृष्टिबाधितों की पहुँच से बाहर समझा जाता था।

हरीश कुमार ने अपनी शिक्षा सही आयु में आरम्भ कर दी थी। परन्तु दृष्टिबाधा के कारण उन्हें माध्यमिक स्कूल परीक्षा, गैर स्कूली छात्र के रूप में देनी पड़ी। संतोषजनक परीक्षाफल आने पर उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करने का निर्णय लिया। हरीश जी ने राजनीति शास्त्र में एम. ए. किया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध उनका प्रिय विषय था।

कोटियन को कम्प्यूटर बहुत आकर्षित करते थे। दृष्टिबाधा के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रह उनकी राह का बड़ा रोड़ा था। जब उन्होंने कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग सीखने का मन बनाया, तो कम्प्यूटर संस्थानों ने उन्हें प्रवेश देने से इन्कार कर दिया। उन दिनों इस विषय में जानकारी सीमित थी तथा दृष्टिबाधितों के लिये कोई शिक्षण कार्यक्रम भी उपलब्ध नहीं था। फिर भी हरीश की दृढ़ इच्छा, प्रौद्योगिकी में प्रबल रुचि, धैर्य



तथा कड़े परिश्रम के कारण समस्याएं सुलझती गईं। हरीशकुमार कोटियन ने अनेक गैर पारम्परिक योग्यताएं प्राप्त की हैं। उन्होंने सॉफ्टवेयर निर्माण व विकास तथा व्यापार प्रबंधन में डिप्लोमा किया। इस प्रकार श्री कोटियन ने इस परम्परागत विचार को अस्वीकार कर दिया कि कुछ व्यवसाय दृष्टि अक्षम व्यक्तियों के लिये नहीं बने हैं। श्री हरीशकुमार ने अपना व्यावसायिक जीवन रिजर्व बैंक में टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में शुरू किया। कम्प्यूटर कार्यक्रम निर्माता के रूप में काम करना एक चुनौतीपूर्ण अनुभव था। प्रारंभ में उनके सहकर्मी तथा उच्चाधिकारी उनकी योग्यता को लेकर घोर संदेह की स्थिति में थे। नकारात्मक दृष्टिकोण की परवाह किये बगैर जब हरीश जी ने अपनी योग्यता का प्रदर्शन करना आरम्भ किया तो उनके विचार स्वयं ही बदल गये। संशय का स्थान धीरे-धीरे आश्चर्य और फिर प्रशंसा ने ले लिया।

आज संगठित क्षेत्र में प्रथम दृष्टिबाधित कार्यक्रम निर्माता के रूप में वे अपनी पहचान बना चुके हैं। श्री कोटियन सूचना प्रौद्योगिकी विभाग में सन् 1981 से कार्यरत हैं। सम्प्रति वे रिजर्व बैंक में प्रबंधक हैं।

अपनी सफलता के विषय में पूछने पर उनका उत्तर था, ''कठोर परिश्रम, आत्म विश्वास तथा पारस्परिक श्रेष्ठ संबंध--मुझे वर्तमान स्थिति तक लाये हैं।'' उनके उत्तरदायित्वों में सॉफ्टवेयर विकास सम्मिलित है। यह देखकर उन्हें प्रसन्नता होती है कि अनेक दृष्टिहीन आज कम्प्यूटर की ओर आकर्षित हो रहे हैं, परन्तु उनके समय में स्थिति बिल्कुल भिन्न थी।

हरीश का विवाह माता-पिता की इच्छानुसार हुआ। उनकी पत्नी कुशल गृहणी हैं, उनकी तीन बेटियाँ हैं। वे सपरिवार विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेते रहते हैं। हरीशकुमार विकलांग कल्याण से भी संबद्ध रहे हैं। उन्होंने अपनी रुचि के कारण दृष्टिबाधितों के अनेक संगठनों में उत्तरदायित्वपूर्ण पद संभाले हैं। इसी क्रम में वे भारतीय दृष्टिहीन स्नातक मंच के अध्यक्ष के रूप में भी सेवा दे चुके हैं।

उन्होंने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पत्र प्रस्तुत किये हैं। उपलब्धियों के फलस्वरूप उन्हें अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं। हरीश जी को राष्ट्रपति का 'श्रेष्ठ विकलांग कर्मचारी का राष्ट्रीय पुरस्कार' मिल चुका है। एन. ए. बी. का सर्वोत्तम कर्मचारी श्रेणी के लिए 'पीलू खम्बाटा पुरस्कार' भी उन्हें मिला है। कर्नाटक दृष्टिहीन कल्याण संघ ने उन्हें 'उदीयमान तारा सहस्त्राब्दि पुरस्कार' प्रदान किया है।

पुरस्कार व उपलब्धियों ने विनीत हरीश कुमार कोटियन को अभिमान से दूर रखा है। कार्य के प्रति अपने सर्मपण द्वारा वे अनेक व्यक्तियों को प्रेरणा दे रहे हैं। विशेषकर कम्प्यूटर में रुचि रखने वाले दृष्टिबाधितों के लिये हरीश जी प्रेरणा का सबल स्रोत हैं।

•

# हीरू चंदनानी
## नए क्षितिजों की ओर

—प्रिया वर्धन

''मेरा परिवार तथा मेरे मित्र मेरे साथ सदैव समानता का व्यवहार करते हैं--न दया, न बहाना, कुछ भी नहीं। आज मैं जो कुछ हूँ वह इसका ही परिणाम है,'' आई. बी. एम. में मानव संसाधन प्रबन्धन विशेषज्ञ हीरू चंदनानी दृढ़तापूर्वक कहती हैं कि इस बात का यह स्पष्ट प्रमाण है कि किस तरह दृढ़ निश्चय, पारिवारिक सहयोग तथा एकीकृत शिक्षा सफलता को सुनिश्चित कर सकती है।

हीरू का जन्म 16 अप्रैल, 1978 को बंगलोर में हुआ। वे जन्मांध हैं। शिक्षा के लिए अधिकतर विद्यालयों ने उन्हें प्रवेश देने से इंकार कर दिया था। कारण, उनकी दृष्टि-बाधा। परन्तु उनके दृढ़ प्रतिज्ञ माता-पिता सामान्य स्कूल में उन्हें प्रवेश दिलवाने के लिए प्रयासरत रहे। सात वर्षीया हीरू ने अपने दृढ़ विश्वास से बिशप कॉटन्स बालिका हाईस्कूल की प्रधानाध्यापिका को ऐसा प्रभावित किया कि उन्होंने तुरन्त प्रवेश दे दिया। चंदनानी के विचार में प्रगति के लिए एकीकृत शिक्षा सर्वोत्तम सम्भावित उपाय थी। इसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने जिस ओर कदम बढ़ाया सफलता मिलती रही--चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो और चाहे पाठ्यक्रम सहगामी और पाठ्यक्रमेतर क्रियाओं का क्षेत्र हो।

कॉलेज में वे मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहती थीं जो दृष्टिबाधित के लिए एक असामान्य विषय समझा जाता है। कॉलेज अधिकारियों ने इन्कार करते हुए उन्हें पुनर्विचार कर एक सप्ताह बाद आने की सलाह दी। वे एक सप्ताह बाद विषय के बारे



में और भी अधिक दृढ़ निश्चय के साथ लौटीं। अत: कॉलेज ने हीरू को उनकी पसन्द का विषय लेने की अनुमति दे दी। मनोविज्ञान में प्राप्त उनके अच्छे अंकों ने उन्हें भी अपना समर्थक बना दिया जो आरम्भ में हीरू द्वारा इस विषय को लेने के पक्ष में नहीं थे। अध्ययन में दूसरों की सहायता तथा पाठ्य-सामग्री की सस्वर पुनरावृत्ति से हीरू को अपना विषय समझने में बड़ी मदद मिली। लोगों के दृष्टिकोण तथा अन्य समस्याओं से निबटने के विषय में हीरू चंदनानी तथ्यपरक ढंग से कहती हैं ''आप जहाँ भी जाएंगे, समस्याएं मिलेंगी, महत्वपूर्ण बात यह है कि आप किस प्रकार उनका समाधान करते हैं।''

अध्ययन के पश्चात किसी भी व्यक्ति की तरह नौकरी ढूंढ़ना उनके लिए चुनौती थी। इसमें भी उन्हें कोई समस्या अनुभव नहीं हुई। उनके अनुसार साक्षात्कार में बड़े टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछे गए और उन्हें अपनी पहली नौकरी संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक के रूप में मिल गई। तत्पश्चात उन्होंने कई नौकरियां बदली। अधिकतर कम्पनियों ने उन्हें दृष्टि-अक्षमता के कारण नौकरी पर नहीं रखा। कुछ के लिए वे विनम्रतापूर्वक स्वीकार करती हैं, ''मेरा काम अच्छा नहीं था।''

फिर हीरू को उनके शब्दों में अब तक का 'सर्वोत्तम' अवसर सन् 2004 में आई. बी. एम. में प्राप्त हुआ। प्रत्यक्ष साक्षात्कार से पहले टेलीफोन पर आरम्भिक साक्षात्कार लिया गया। उनसे पूछा गया कि वे अपना काम किस प्रकार करेंगी ? हीरू ने इसे स्पष्ट किया और उन्हें नौकरी मिल गई। मानव-संसाधन चंदनानी की स्वाभाविक पसन्द थी क्योंकि ''यह मेरे जैसे सामान्य लोगों के विषय में होता है।''

मानव संसाधन विशेषज्ञ के रूप में उनकी भूमिका किसी की नियुक्ति के पश्चात आरम्भ होती है। वे नवनियुक्त व्यक्ति तथा प्रबन्धकों के मध्य कड़ी का काम करती हैं। चंदनानी नवनियुक्त व्यक्ति एवं उच्चस्थ प्रबन्धकों को मानव संसाधन नीति, कार्य संस्कृति व वेतन इत्यादि के सम्बन्ध में एक दूसरे की अपेक्षाओं से परिचित करवाती हैं। क्या दृष्टिबाधा के फलस्वरूप अपने सेवा कार्य में उन्हें कुछ कठिनाई होती है ? वे पूरे विश्वास से कहती हैं, ''बिल्कुल नहीं।''

हीरू चंदनानी के लिए उनकी विकलांगता कोई बाधा नहीं है। उनका विचार है कि कुल मिलाकर विकलांगता को स्वयं तथा दूसरों को भी इसे सहज रूप से स्वीकार करने का प्रश्न है यही कारण है कि उन्हें कार्यालय में अथवा अन्यत्र दृष्टिकोण सम्बन्धी किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। सामाजिक दृष्टिकोणों का सामना करने के बारे में वे कहती हैं, ''हम कैसे काम करते हैं--लोगों को शिष्टता, धैर्य तथा समझदारी से यह बताना हम पर निर्भर करता है। उन्हें जानने के लिए कुछ समय की आवश्यकता होती है और अन्तत: वे जान ही जाते हैं।''

मनोविज्ञान में एम. ए. और फिर मानव संसाधन प्रबन्धन में नौकरी जैसी

उपलब्धि सम्भवत: किसी अन्य दृष्टिबाधित महिला ने भारत में अभी तक प्राप्त नहीं की। दरअसल हीरू ने अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। एन. ए. बी. मुम्बई द्वारा उन्हें वर्ष 2003 में 'नीलम खुर्शीद काँगा पुरस्कार' प्रदान किया जाना इसका प्रमाण है।

चंदनानी का जीवन अध्ययन तथा आजीविका तक ही सीमित नहीं है, उसके अनेक आयाम हैं। उनकी पृष्ठभूमि पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत की है परन्तु वे हंगेरियन, वेल्श, जापानी, कोरियाई, इतालवी, अंग्रेजी, लातीनी व फ्रौंसिसी भाषाओं में गा सकती हैं तथा फ्रौंसिसी बोल भी सकती हैं। वे पियानो बजाती हैं तथा भजन-मंडली में गाती भी हैं। संगीत में अभिरुचि के फलस्वरूप उन्हें अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। हीरू चंदनानी ने जापान में नीगाता सरकार द्वारा आयोजित नीगाता एशियाई सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने गई एशियाई युवा भजन-मंडली में भारत का प्रतिनिधित्व किया। वे गर्व से कहती हैं, "भजन-मंडली में जापान जाने वाली मैं प्रथम व अकेली भारतीय थी।" वास्तव में उस मंडली में वे अकेली दृष्टि विकलांग थीं।

जापान के अतिरिक्त वे श्रीलंका, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया, तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की भी यात्रा कर चुकी हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में वे सन् 1998 में मोबिलिटी इन्टरनेशनल द्वारा विकलांगता पर आयोजित एक कार्यक्रम में भाग लेने गई थीं।

भारत में विकलांगता के परिदृश्य पर टिप्पणी करते हुए चंदनानी का कथन है कि अब लोगों को दृष्टिबाधितों के संबंध में अधिक जानकारी है, वे यह भी जानते हैं कि दृष्टि-अक्षम व्यक्ति क्या कुछ कर सकते हैं तथा क्या नहीं एवं जनता उन्हें समानता का दर्जा देती है। विकलांग व्यक्ति कैसे काम करते हैं, यह जानने व सीखने के लिए लोगों में उत्सुकता पाई जाती है। वे दृष्टिहीनों को परामर्श देती हैं कि वे अपनी सहायता करें तथा लोगों को यह बताएं कि दृष्टिहीनों के साथ किस प्रकार व्यवहार करें।

मानव संसाधन विशेषज्ञ, पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत एवं भजन-मंडली गायिका तथा पियानोवादिका कुमारी हीरू चंदनानी अपनी सफलता एवं उपलब्धियों का श्रेय प्रभु की कृपा, परिश्रमशीलता, दृढ़ निश्चय, नवीन क्षेत्रों में प्रयास की इच्छा, गवेषणात्मक मानसिकता, बहिर्मुखी स्वभाव, जीवन-रुचियों व अभिरुचियों के प्रति तीव्र लगाव, विश्राम व काम में संतुलन तथा अत्यन्त सहयोगी माता-पिता, बहिन एवं मित्रों को देती हैं।

प्रकाशक :

ऑल इण्डिया कन्फेडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड
ब्रेल भवन,
सैक्टर-5, रोहिणी,
दिल्ली-110085

दूरभाष: 011-27054082
फैक्स: 011-27050915

ईमेल : aicbdelhi@yahoo.com
वेब साइट : www.aicb.org.in